યુક્રાંદ

THE RED GUARD
EINSTEIN ON PEACE
The New Politics
DEATH IN LIFE
DEATH
PSYCHOLOGY

ताओ !

मैं खड़ा हूं गंगा के किनारे। वर्षा की गंगा। बाढ़ आई गंगा। जैसे कि सागर ही है।
न ओर, न छोर।
आंधियां और वर्षा।
जैसे कि आकाश ही फटा जाता है।
और भागती जल-धारा का तुमुलनाद।
कुछ और सुनाई पड़ता है----न कुछ और दिखाई पड़ता है।
बस गंगा ही गंगा।
फिर देखा कि घास के दो छोटे-छोटे तिनके भी गंगा में बहे जाते हैं।
उनमें से एक गंगा से संघर्ष कर रहा है। लड़ रहा है।
उसने तो जैसे गंगा को रोकने के लिए अपनी सारी शक्ति ही लगा दी है।
उसके प्राण बड़े संकट में हैं।
उसने स्वयं को गंगा के मार्ग में आड़ा डाल रखा है।
लड़ने का इसके सिवाय और कोई मार्ग भी तो नहीं है।
उसके माथे पर चिंता है।
उसकी आत्मा में तनाव है।
उसका अस्तित्व ही संताप हो गया है।
उसके पागल हो जाने में भी तो कोई कमी नहीं रह गई है।
वह प्रतिपल हार रहा है।
लड़ने वाले जीतते ही कब हैं ?
लेकिन, दूसरा तिनका जीत रहा है।
क्योंकि, वह लड़ ही नहीं रहा है।
जो लड़ते ही नहीं, उन्हें हराने का कोई उपाय भी तो नहीं है ?
दूसरा तिनका गंगा के बहने में सहयोग दे रहा है।
वह शत्रु नहीं, साथी है।
उसने स्वयं को गंगा के बहाव के साथ लम्बाई में छोड़ दिया है।
जैसे वह गंगा के लिए मार्ग दे रहा है !
जैसे गंगा उसमें से होकर ही बही जा रही है !

(शेष कव्हर तीन पर)

मक्का अभी है, मक्का यहीं है

कोई पूछता है : "सत्य का मार्ग क्या है ? मुक्ति का मार्ग क्या है ? प्रभु का मार्ग क्या है ?"

मैं उससे कहता हूं : "मार्ग ? नहीं, वह मार्ग भी है और मार्ग नहीं भी है। वह मार्ग है क्योंकि उससे पहुंचना होता है— उससे गुजरना होता है-- क्योंकि उसके बिना मंजिल नहीं है। लेकिन वह और मार्गों जैसा मार्ग नहीं है, जो कि पूर्व से ही तैयार होते हैं, और जिनपर कि पहुंचने के लिए बस चलना ही काफी होता है। वह मार्ग ऐसा मार्ग है जिसे कि स्वयं ही बनाना भी होता है । उसे बनाना ही उस पर चलना है। श्रमपूर्वक एक-एक पत्थर रखो और उन पर ही आगे बढ़ो। रखो एक-एक पत्थर—जमाओ उन्हें—खाली जगहें भरो और आगे बढ़ो। इधर रास्ता बनता जाता है, उधर तुम आगे बढ़ते जाते हो। और राही तो तुम हो ही रास्ता भी तुम ही हो। रास्ता बनाओ तो जानो। और जब मंजिल पाओगे तो जानोगे कि मंजिल भी तुम ही हो । सत्य स्वयं से भिन्न नहीं है। सत्य तक पहुंचने का साधन भी स्वयं से भिन्न नहीं है। साधक, साधन, साधना, सिद्धि—सब एक ही शक्ति के रूपांतरण हैं। और इसलिए जिस दिन कोई स्वयं को उसकी पूर्णता में जानता है, उस दिन सिवाय हंसने के और कुछ शेष नहीं रह जाता है; क्योंकि तब पता चलता है कि मैं जहाँ पहुंचना चाहता था वहाँ तो मैं सदा-सदैव से था ही। और जो मैं होना चाहता था, वह तो मैं हूं ही। अहा ! हा ! फिर हंसो और नाचो—नाचो और हंसो—स्वयं पर जो कि खोज रहा था, उसे ही जो कि वह है !

एक फकीर मक्का की यात्रा को निकला है।

लम्बी है यात्रा और अनंत कठिनाईयां हैं।

सबसे बड़ी कठिनाई तो यही है कि उसे पता ही नहीं है कि मक्का कहाँ है ?

किसे पता है ?

फिर भूख है, प्यास है, डाकू हैं, लुटेरे हैं और मरुस्थल की आग है।

पूरा संसार ही है !

और वह जितना चलता है कि पाता है कि गन्तव्य उतना ही दूर हुआ जाता है !

कौन नहीं पाता है ?

फिर एक सांझ वह थककर गिर गया है।

जैसे कि सभी गिर जाते हैं।

लेकिन एक फर्क है और बड़ा है वह फर्क।

वह मक्का की राह में गिरा है!

अधिक तो मधुशालाओं की राह में ही गिरते हैं!

लगता है कि यात्रा तो नहीं चुकी पर वही चुक गया है।

रात्रि बढ़ती जाती है और मौत निकट आती मालूम पड़ती है।

फिर अचानक लगता है जैसे वह मर ही गया है।

पर तभी उसे एक आवाज सुनाई पड़ती है : "मक्का यहीं है, मक्का अभी है। (Mecca is HERE, Mecca is NOW.)

वह मक्का के दर्शन की आशा में बंद आँखें खोल देता है।

लेकिन, नहीं—बाहर अंधकार के सिवाय और कुछ भी नहीं है!

वह सिर उठाकर सुनने की कोशिश भी करता है कि वह आवाज किसकी थी—ये शब्द किसके थे ?

लेकिन, रात्रि के सन्नाटे के अतिरिक्त और कुछ भी सुनाई नही पड़ता है।

और तब वह आँखें बन्द कर लेता है।

और फिर वह मरुस्थली सुनसान उसकी हंसी से गूंज उठता है।

क्योंकि, मक्का भीतर है, और वह बाहर खोज रहा था!

और वह आवाज उसकी स्वयं की ही गहराइयों से उठी थी, जिसे कि वह किसी और की समझ रहा था!

और वह फिर उस जीवन को उपलब्ध हो जाता है जिसको कि कोई मृत्यु नहीं है।

लेकिन मृत्यु से गुजरे बिना अमृत नहीं है।

न ही अंधकार से गुजरे बिना आलोक है।

और न ही संसार से गुजरे बिना सत्य है।

(**एक चर्चा से**)
संकलन : **क्रांति**

जीवन एक स्वप्न—

(आचार्य श्री द्वारा पोरबंदर में दिया गया तृतीय प्रवचन)

संकलन—**जयवन्ती, जूनागढ़**

मेरे प्रिय आत्मन,

एक मित्र ने पूछा है कि यही जीवन स्वप्न है तो फिर सत्य क्या है ? जीवन स्वप्न है, जब मैं ऐसा कहता हूं तो उस जीवन के लिए कह रहा हूं कि जब हम आँख बंद करके जी लेते हैं । जब हम अज्ञात में जी लेते हैं । जब हम अंधकार में जी लेते हैं । यही जीवन सत्य हो जायगा, यदि आंख खुली हो । प्रकाश हो और हम स्वयं को जानकर जीने लगें । सत्य जीवन कहीं किसी और लोक में नहीं है । सत्य जीवन कोई दूसरा जीवन नहीं है । यही जीवन अंधेरे में, अज्ञान में, अंधेपन में स्वप्न हो जाता है । यही जीवन प्रकाश में, ज्ञान में, स्व-बोध में सत्य बन जाता है ।

सुना है मैंने कि एक फकीर एक रात सोया और उसने प्रभु से प्रार्थना की कि मैं जानना चाहता हूं, इस गाँव में सबसे बड़ा पापी कौन है ? रात उसे स्वप्न दिखाई पड़ा कि परमात्मा उसे कह रहा है कि वह जो तेरे पड़ोस में रहता है, वही सबसे बड़ा पापी है । वह बहुत हैरान हुआ । उसके पड़ोस में एक बहुत साधारण सा आदमी रहता था, पापी होने के लिये भी असाधारण होना तो जरूरी है । अतिसामान्यजन उसके पड़ोस में रहता था । उसने कभी सोचा भी न था कि गाँव का सबसे बड़ा पापी वह होगा । दूसरे दिन उसने उसे गौर से देखा । रात में जब वह सोने लगा तो उसने फिर एक प्रार्थना की कि मैं समझ गया कि गाँव में सबसे बड़ा पापी कौन है, अब एक कृपा और करो प्रभु; मैं जानना चाहता हूं, इस गाँव में सबसे बड़ा पुण्यात्मा कौन है ? रात स्वप्न में उसे फिर परमात्मा ने कहा कि वह जो तेरे पड़ोस में रहता है, वह सबसे बड़ा पुण्यात्मा है । सुबह तो वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया है । उसने कहा : यह तो बड़ी पहेली हो गई । और यह तो कभी सोचा न था कि परमात्मा भी इतना सेल्फ कान्ट्राडिक्टरी, इतना स्व-विरोधी बातें करता हो । उस आदमी को कल तो बताया सबसे बड़ा पापी है और आज बताया सबसे बड़ा पुण्यात्मा है । उसने फिर उस आदमी को गौर से देखा । रात उसने परमात्मा को प्रार्थना की कि एक कृपा और करें । अगर यही आदमी सबसे बड़ा पापी है, यही सबसे बड़ा पुण्यात्मा है तो तूने मुझे बड़ी उलझन में डाला है । इसे हल और कर दें, फिर दुबारा न पूछूंगा । तो रात-स्वप्न में उसे फिर आवाज सुनाई पड़ी कि अगर उस आदमी को बाहर से देखें तो पापी ही है और अगर उसे भीतर से देखें तो वह जो भीतर है, वह पुण्यात्मा ही है । आदमी वही है । कहाँ से देखते हैं; यह सवाल है । जिन्दगी वही है । कैसे देखते हैं, कहाँ से देखते हैं, यह सवाल है । तो जब मैं कह रहा हूं, जिन्दगी एक स्वप्न है तो असल में मैं यह कह रहा हूं कि जिन्दगी को देखने का हमारा जो ढँग है, वह उसे स्वप्न बना देता है । जिन्दगी का देखने का हमारा ढंग बदल जाय तो वह सत्य हो जाती है । एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि अगर जिन्दगी स्वप्न है; तब तो जो ज्ञानीजन हैं, उनके लिए दुनिया मिट जायगी । फिर वे व्यवहार किसके साथ करते हैं ?

निश्चित ही; जो ज्ञानी जन है, उनके लिये वह दुनिया मिट जाती है जो हमारे लिये हैं । उनके

लिये दुनिया ही नहीं मिट जाती है, लेकिन उनके देखने का ढंग एक नई दुनिया को इसी दुनिया के भीतर प्रगटकर देता है । वे भी इसी वृक्ष के पास से गुजरते हैं, जिसके पास से आप गुजरते हैं, जिसके पास से आप गुजरे । वे भी आपसे बात करते हैं, कल भी करते थे, आज भी करते हैं लेकिन सब बदल गया है । कल जब इस वृक्ष के पास से गुजरते थे तो एक साधारण वृक्ष था, अब जब इसके पास से गुजरते हैं तो यह वृक्ष भी परमात्मा की एक आकृति हो गया है । और कल जब उनने आपसे बात की थी तो एक आदमी से बात की थी जो अपने से अलग था और आज जब आपसे बात करेंगे तो अपने ही प्राणों के दूसरे छोर से बात कर रहे हैं । अब दूसरा नहीं है । हमारी दुनिया तो मिट जाती है, लेकिन दुनिया ही नहीं मिट जाती है । हम जिस भाँति देखते हैं वह तो मिट जाता है । एक और फकीर के संबंध में मैंने सुना है कि एक रात कोई बारह बजे होंगे । कोई चोर उसके झोपड़े में पहुंच गया है । दरवाजा अटका हुआ था । चोर ने हाथ लगाया कि दरवाजा खुल गया । वह चोर भीतर गया तो बहुत घबड़ा गया । सोचा न था कि आधी रात और घर पर मालिक जागता होगा । वह फकीर बैठकर कुछ लिख रहा था । उसने चोर से कहा : आओ—आओ, बैठो-बैठो । वह चोर तो और मुश्किल में पड़ गया है । अगर वह फकीर चिल्ला देता चोर है, चोर है, बचाओ, तो वह चोर भी भाग सकता था । उस फकीर ने कहा : बैठो, कैसे आये ? वह भाग भी न सका । बैठ गया उसके पास । फिर फकीर ने पूछा इतनी रात को आये, जरूर कोई जरूरी काम होगा । बोलो कैसे आये ? मैं तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूं ? उस चोर को बड़ी मुसीबत हो गई । उस चोर ने कहा कि तुम जैसे आदमी के सामने झूठ बोलने की भी मेरी हिम्मत नहीं पड़ रही है । मैं एक चोर हूं और चोरी करने आया था । फकीर ने कहा : बड़ी खुशी की बात है । अब बोलो मैं तुम्हारी क्या सेवा करूं ? उस चोर ने कहा : आप शायद समझे नहीं; मैं चोरी करने आया हूं । उस फकीर ने कहा : वह तो मैं समझ गया । मैं यह समझने में मुश्किल में पड़ गया हूं कि तुम चोरी करने तो आ गये हो लेकिन, मेरे घर कुछ चुराने को नहीं है । अगर तुम दो दिन पहले खबर देते तो मैं कुछ इन्तजाम कर रखता तुमने मुझे मुश्किल में डाल दिया । फिर उसने कहा कि नहीं, मुझे ख्याल आया, दो चार दिन पहले कोई आदमी कुछ पैसे भेंट कर गया था । उस आले में देखो शायद पड़े हैं । वह चोर उठा, देखा वहाँ दस रुपये पड़े थे । उसे उठाके लाया, उसे फकीर ने कहा : कृपा करके स्वीकार कर लो, मना मत करना । अन्यथा; मुझ गरीब फकीर को बड़ा दुःख होगा । मुझे भी एक मौका मिला जिन्दगी में कि अपने घर भी कोई चोर आता है । इतना धनी मैंने अपने को कभी भी न समझा था । तुमने मुझे बड़ा सौभाग्य दिया है । तुम कृपा करके मना मत कर देना । वह चोर बड़ी मुश्किल में पड़ गया । फिर उस फकीर ने कहा कि इतनी कृपा और करो कि एक रुपया मुझे उधार वापिस दे जाओ । सुबह—सुबह मुसीबत पड़ेगी । जल्दी लौटा दूंगा, यह वायदा पक्का रहा । वह चोर एक रुपया रख, किसी तरह वहाँ से जी छुड़ाकर भागा । वह दरवाजे पर पहुंचा था कि बाहर निकले कि उस फकीर ने चिल्ला कर कहा कि सुनो दरवाजा बंदकर जाओ और कम से कम मुझे धन्यवाद दे जाओ क्योंकि, कल ये रुपये तो खत्म हो जायेंगे, धन्यवाद फिर भी पीछे काम आ सकता है । और जिसका दरवाजा खोला है, उसका सदा अटका कर तो जाना चाहिये । चोर दरवाजा अटकाकर, धन्यवाद देके किसी तरह भागा । ठंडी रात है । उसने बड़ी बड़ी चोरियां की थीं, उसके माथे पर पसीना न आया था । लेकिन आज उसे बड़ी मुसीबत हो गई । और बाद में इस चोर ने लोगों से कहा कि मेरी जिन्दगी में सबसे खतरनाक चोरी वही थी जो मैं उस फकीर के घर में चला गया था । फिर दो साल बाद वह पकड़ा गया, किसी और सिलसिले में और तब यह फकीर की चोरी भी पता चली । मजिस्ट्रेट ने उस फकीर को बुलाकर पूछा कि क्या यह आदमी चोर है ? उस फकीर ने कहा कि जरा भी नहीं । चोर तो यह है ही नहीं बल्कि बहुत अद्भुत आदमी है ! मैंने इससे एक रुपया उधार लिया था, यह दो साल में इन सज्जन की शक्ल अब दिखाई पड़ी । वह मुझे लौटाना है । रुपया उसने उसको लौटा दिया और मजिस्ट्रेट से कहा कि यह बहुत ही अद्भुत आदमी है । दो साल हो

गये, रुपया लेने लौटा ही नहीं। वह चोर जब छूटके आया तो उस फकीर के पास पहुंच गया और उसने कहा कि तुमने मेरी जिन्दगी बदल दी है। तुम पहले आदमी हो जिसने मेरे भीतर चोर नहीं देखा। तुमने पहली दफे मुझे इस बात की याद दिलाई है कि मैं चोर के अतिरिक्त और कुछ भी हो सकता हूं। जिन लोगों को जिसे हम जिन्दगी कहते हैं, वह सपना हो जाती है, इसका मतलब यह नहीं है कि उन्हीं के लिये कुछ शेष नहीं बचता। इसका मतलब यही है कि वह हमारे सपने का जाल गिर जाता है और वही शेष बच जाता है, जो है। जो वस्तुतः है। चोर की खोल तो गिर जायगी लेकिन भीतर जो आदमी है, वह जो आत्मा है, वह शेष रह जायगी। शुद्र की खोल गिर जायगी, ब्राम्हण की खोल गिर जायगी, हिन्दू की, मुसलमान की खोल गिर जायगी। लेकिन, भीतर वह जो जीवन्त चेतना है, वह शेष रह जायगी। उनका व्यवहार होगा; उस आपके साथ नहीं जो आप अपने को समझते हैं बल्कि, उस आपके साथ जिसका आपको कोई भी पता नहीं है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि जो दिखाई पड़ रहा है, उसे हम कैसे सपना मान लें? और आप जो बात कर रहे हैं, उसे हम कैसे सत्य मान लें?

दिखाई पड़ने से ही अगर कोई चीज सत्य होती हो तब तो रात के सपने भी सत्य हो जायेंगे। वे भी दिखाई पड़ते हैं। अकेले दिखाई पड़ने से कोई चीज सत्य नहीं हो जाती है। अकेले दिखाई पड़ जाना कोई चीज के सत्य हो जाने के लिये काफी नहीं है। आदमी वह सब भी देख लेता है, जो नहीं है। नहीं, दिखाई पड़ने वाली चीज से पहले जो देख रहा है जब तक दिखाई न पड़े तब तक देखी गई चीज का भरोसा मत करना। दृश्य का भरोसा मत करना जब तक दृष्टा का बोध स्पष्ट न हो जाय। वह जो देख रहा है उसका जब तक पता न हो, तब तक जो दिखाई पड़ रहा है उसका भरोसा मत कर लेना क्योंकि सत्य की शुरुआत दृष्टा से होती है। और जो हमारे भीतर देख रहा है, वह जब हमें दिखाई पड़ने लगता है, तब जो हम देखते हैं; उसके असत्य होने की कोई सम्भावना नहीं रह जाती। एक आदमी शराब पी के चल रहा है रास्ते पर। उसे बहुत कुछ दिखाई पड़ता है लेकिन, सुबह होश में आके वह कहता है कि सब झूठ था। नशे में दिखाई पड़ा। लेकिन नशे में वह चीजें कैसे दिखाई पड़ीं जो नहीं थीं! नशे ने क्या किया? क्या नशा चीजों को पैदा कर देता है जो नहीं है? नहीं, नशा चीजों को पैदा नहीं करता, नशा वह जो देखने वाला है उसको बेहोश कर देता है। उसके बेहोश होते ही सपनों की दुनिया शुरु हो जाती है। हमारी जिन्दगी में जो सपने का राज है, वह झूठी चीजों का पैदा होना नहीं है, वह देखने वाले का बेहोश होना है। अगर आप भीतर बेहोश हैं तो आप जिस दुनिया में जी रहे हैं, वह सपना होगी और अगर आप भीतर होश से भर गये हैं तो आप एक दूसरी दुनिया में जीयेंगे।

अर्जुन युद्ध के मैदान पर खड़ा है। वह घबड़ा गया है। वह डर रहा है कि अपने प्रियजनों को कैसे मारें! वह घबड़ा रहा है, इतने लोग मर जायेंगे, इतना खून-खराबा होगा। उसके मन में बड़ी विरक्ति है। कृष्ण बहुत उपद्रवी मालूम पड़ते हैं। वह उससे कहते हैं; कोई नहीं मरेगा, तू बेफिक्री से मार। क्योंकि, कोई मरता ही नहीं है। वह अर्जुन की समझ में नहीं पड़ती है बात कृष्ण उससे कहते हैं कि यह सब तुझे मरते हुये दिखाई पड़ेंगे, यह कोई भी मरते नहीं हैं क्योंकि, वह जो है भीतर, वह न कभी मरा है, न मर सकता है। वह दो दुनिया की अलग तरह की बात कर रहे हैं। कृष्ण उस सत्य की बात कर रहे हैं जो सदा है, अर्जुन उस सत्य की बात कर रहा है जो दिखाई पड़ रहा है। अर्जुन भी कृष्ण से कहेगा, कह सकता है, कहा भी है कि जो दिखाई पड़ रहा है, उसे मैं कैसे झूठ मानूं? लोग मर जायेंगे, अभी कट जायेंगे। निश्चित ही; अगर मेरी गरदन आप काट दें तो दिखाई यही पड़ेगा कि मैं कट गया लेकिन,.... कुछ और भी है भीतर, जिसके आर पार छुरी और तलवार नहीं जाती है। वह अनकटा रह जायगा लेकिन, वह दिखाई नहीं पड़ता है। जो दिखाई पड़ता है वह कट

जाता है। जो नहीं कटता है वह दिखाई नहीं पड़ता है। और जो नहीं दिखाई पड़ता है, उसका हमें कोई भी पता नहीं है। स्वभावतः जो दिखाई पड़ता है, हम उसे मान लेते हैं।

सिकन्दर हिन्दुस्तान से लौट रहा था। जब यूनान से वह चला था तो उसके मित्रों ने कहा था कि हिन्दुस्तान से एक सन्यासी भी ले आना। असल में सन्यासी जैसा व्यक्तित्व दुनिया में और कहीं मुश्किल से होता है। तो मित्रों ने कहा था; और धन लूटकर लावोगे तो एक सन्यासी को भी ले आना, हम देखना चाहते हैं कि सन्यासी क्या बला है। कैसा होता है। सुनी हैं बहुत खबरें यात्रियों से लेकिन, सन्यासी का क्या होना है? सिकन्दर सब लूट तो करता रहा लेकिन भूल गया, सन्यासी की बात। ठीक हिन्दुस्तान छोड़ रहा था उस दिन उसे ख्याल आया। उसने कहा कि एक सन्यासी को और कहीं से पकड़ लाओ। सिपाहियों से कहा कि जाओ, खोजो। वह गांव में गये, गांव के लोगों ने कहा, सन्यासी तो है, लेकिन सिकन्दर ले जा सके इतनी ताकत सिकन्दर में है? सिकन्दर के सिपाहियों ने कहा; पागल हो गये हो! सिकन्दर को अब ताकत पूछो हो? अगर पहाड़ों से कहे कि चलो तो पहाड़ों को भी जाना पड़ेगा। तुम फिकर छोड़ो, वह सन्यासी है कहां? इस गांव के लोगों ने कहा कि तुम्हें शायद पता नहीं, पहाड़ शायद चले भी जायें, सवाल सन्यासी के जाने का है फिर भी कोशिश करो। गये वे; गांव के बाहर, नदी के किनारे वह आदमी खड़ा था, जिसको गाँव के लोगों ने बताया था। नग्न, नदी की रेत में, धूप में। सिपाहियों ने कहा कि सिकन्दर की आज्ञा है कि एक सन्यासी को यूनान ले जाना है। हम पूरे सत्कार, सम्मान से तुम्हें ले चलेंगे। सुविधा, सुख, सबकी व्यवस्था करेंगे, आप चलें। उस सन्यासी ने कहा; सिकन्दर से जाकर कहना; जिस दिन मैं सन्यासी हुआ उसी दिन से मैंने किसी की भी आज्ञा माननी बंद कर दी है। सन्यासी और आज्ञा मानता है! तो फिर गृहस्थ ही बना रहता। आज्ञा ही माननी होती तो बंधा रहता, आज्ञायें तोड़ दी हैं। उन सिपाहियों ने कहा; तुम्हें शायद पता नहीं, सिकन्दर की आज्ञा तोड़ना बहुत मंहगा पड़ सकता है। उस सन्यासी ने कहा; मंहगे और सस्ते का ख्याल मत करो क्योंकि, मुझे वह मिल गया है, जिसकी कोई भी कीमत नहीं है। जो न मंहगा है, न सस्ता है। वे सिपाही कुछ भी न समझे। उन्होंने सिकन्दर से जाके कहा तो सिकन्दर नंगी तलवार लेकर गया और उस सन्यासी से कहा कि गरदन अलग कर दूंगा, मेरे पीछे चलो। उस सन्यासी ने कहा, गरदन अलग कर दो। क्योंकि, जिस गरदन को तुम अलग करोगे, मैं बहुत पहले ही जान चुका कि वह अलग है। और जब गरदन नीचे गिरेगी, तुम भी देखोगे कि गरदन नीचे गिरी और मैं भी देखूंगा कि गरदन नीचे गिरी। सिकन्दर ने कहा कि मैं समझा नहीं। सन्यासी ने कहा कि फिर बैठो, समझो और जो मैं कहता हूं वह करो। मुझे ले जाने के बजाय मेरे साथ तुम आ जाओ। अब यह सन्यासी कह सका सिकन्दर से कि तुम भी देखोगे, मैं भी देखूंगा कि—गरदन गिरी और जिस गरदन को तुम अलग करोगे, वह मैं पहले जान चुका हूं कि बहुत पहले अलग है। यह किसी दूसरे जीवन में प्रवेश कर गया है। यह उस जीवन में प्रवेश कर गया है, जहां स्वयं के सत्य का पता चलना शुरू हो गया है। ऐसा समझें, वह जीवन जिसमें मेरा मुझे पता नहीं है, स्वप्न होगा। वह जीवन जिसमें मेरा मुझे पता है, सत्य हो जाता है। असली सवाल मुझे मेरा पता होने का है। आत्मज्ञान आधारशिला है, जिस पर सत्य जीवन निर्मित होता है। आत्म अज्ञान आधारशिला है, जिस पर स्वप्न जीवन निर्मित होता है। अगर यह सूत्र ख्याल में आ जाय तो एक बात और समझ लेनी जरूरी है। आत्म अज्ञान को बचाने का इन्तजाम हमने किया हुआ है। और आत्म ज्ञान खुल न जाय, प्रगट न हो जाय, इसका भी हमने इन्तजाम किया हुआ है। उस इन्तजाम का नाम ही अहंकार है। इगो है। बिना अपने को जाने हुऐ अपने को मैं और मैं और मैं कहे चले जाते हैं। कभी नहीं पूछते यह मैं के भीतर है क्या? मान ही लेते हैं कि हम जानते हैं और इसलिये जानने की कुंजी को हम खोजते ही नहीं। और इस मैं को हम बड़ा करते चले जा रहे

हैं। इस मैं को बड़ा करने का हम जीवन भर उपाय करते हैं। बड़े मकान, ऊंची हवेलियां, बड़े पद, बड़े धन के ढेर, बड़ा यश, बड़ा साज, बड़ा त्याग, इस अहंकार को गुब्बारे की तरह फुलाये चले जाते हैं। और इसी गुब्बारे को हम समझ लेते हैं कि हमारा होना है। फुलाते-फुलाते गुब्बारा फूट जाता है। फूटने को हम समझ लेते हैं, हमारा मरना है और वह जो गुब्बारे के पीछे था, उसका हमें कभी पता ही नहीं चल पाता। जो जन्म के पहले था-और जो मृत्यु के बाद भी होगा, उसका हमें पता नहीं चल पाता है। जन्म और मृत्यु के बीच में वह जो गुब्बारे में हम हवा भरते रहते हैं मैं में, बस, उसका ही हमें पता चलता है और उसमें हवा भरने के हमने बहुत इन्तजाम किये हैं। इतने सूक्ष्म इन्तजाम किये हैं कि ख्याल में नहीं आता है। एक आदमी धन इकट्ठा करता चला जाता है कोई उससे पूछे कि सिर्फ धन इकट्ठा करने का क्या प्रयोजन है ? ऐसे लोग हैं जिनके पास इतना धन है कि अब और आगे धन का कोई भी अर्थ नहीं है। आगे वह धन से कुछ और खरीद न सकेंगे। लेकिन वह दीवाने की तरह धन इकट्ठा करते चले जाते हैं। कुछ और बात है। धन नहीं है असली दौड़, असली दौड़ अहंकार है। जितना ज्यादा धन है, उतना अहंकार भरपूर हो उठता है उतना मजबूत, उतना सघन, उतना सशक्त, उतना पोषित हो जाता है। दौड़ते चले जाते हैं। राज्य, साम्राज्य बड़े होते चले जाते हैं। सुना है सिकन्दर जिंदगी में एक बार दुःखी हुआ। जब किसी दार्शनिक के पास गया, डायजिनीस के पास तब दुःखी हुआ था। क्योंकि, डायजिनीस ने उससे कहा कि सिकन्दर तुझे पता है, एक ही दुनिया है; जीत लेगा फिर क्या करेगा ? सिकन्दर उदास हो गया। उसने कहा; मैंने कभी यह ख्याल नहीं किया, यह तो आप ठीक कहते हैं, एक ही तो दुनिया है। अब यह मैंने जीत लिया तो फिर क्या करूंगा ! अभी जीती नहीं थी दुनिया लेकिन, ये ख्याल ही कि पूरी दुनिया जीत लूंगा तो फिर मेरे अहंकार की आगे जीत कैसे होगी ! फिर मैं करूंगा क्या ? सिकन्दर ने चलते वक्त डायजिनीस से कहा कि तुमने मुझे बहुत उदास कर दिया। और दुनियायें चाहिये। आदमी चांद पर पैर रख रहा है। वह अहंकार की बड़ी गहरी दौड़ का हिस्सा है। वह तारों को जीतेगा, पहाड़ों को जीतेगा, समुद्रों को लांघेगा, लेकिन एक चीज भर को नहीं जीतेगा। खुद को नहीं जीतेगा। क्योंकि, वहां जीतने में उल्टी यात्रा करनी पड़ती है। चांद पर पहुंचने में अहंकार का झंडा गड़ जाता है। एवरेस्ट पर चढ़ने में अहंकार का झंडा गड़ जाता है। पेसिफिक की गहराई नापने में अहंकार के हस्ताक्षर हो जाते हैं। लेकिन कोई अगर अपने को जाय तो अहंकार छोड़ के जाना पड़ता है। वह बड़ा दुःखद है। अगर मैं अपने को जानना चाहूं तो जो पहली शर्त है, वह मैं को छोड़ना है। यही सारा उपद्रव हो जाता है। हां, कुछ लोग हैं जो धन को छोड़ के जाते हैं। लेकिन कितना अद्भुत और कितना चालाक हमारा अहंकार है कि धन को छोड़ के जाते हैं, तब धन को छोड़ने का अहंकार उनका मजबूत हो जाता है।

एक सन्यासी के पास मैं था। उनसे बात होती थी। वह दिन में दो चार बार कहते कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी। मैंने पूछा : यह लात कब मारी ? उन्होंने कहा : कोई तीन साल हो गये। मैंने कहा : लात ठीक से लग नहीं पायी अन्यथा, तीन साल तक याद रखने की क्या जरूरत थी! अब इसको याद क्यों रखे हुए हैं कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी ? इस याददास्त का क्या प्रयोजन है ? इसे दिन में चार बार दोहराने का क्या अर्थ है ? निश्चित ही; जब उनसे पास लाखों रुपये रहे होंगे तब वह अकड़कर चलते रहे होंगे। अब भी वे अकड़कर चल रहे हैं। अब रुपये नहीं हैं। अब रुपये का त्याग है। लाखों रुपये छोड़े हैं, कोई साधारण सन्यासी नहीं हैं वे। तो अब अकड़ दूसरी है लेकिन अहंकार अपनी जगह खड़ा हुआ हंस रहा है। वह कह रहा है पागल ! लाखों थे तो मैं भरता था, लाखों छोड़ दिये तो भी मैं ही भर रहा हूं। कोई फर्क नहीं पड़ा है। और मजा यह है कि पहला जो अहंकार था; वह तो दिखाई भी पड़ता, यह दूसरा बहुत सूक्ष्म है यह दिखाई भी नहीं पड़ेगा। और पहला जो अहंकार था; चोर उसकी चोरी कर सकते थे, सरकार उस पर टेक्स लगा सकती थी। समाजवाद

आता तो सब गड़बड़ हो जाता। यह जो दूसरा अहंकार है, इस पर सरकार टेक्स नहीं लगा सकती, इसकी चोरी नहीं हो सकती, इसको कोई छीन नहीं सकता। यह अहंकार ज्यादा सुरक्षित है। इसलिये त्यागी अक्सर अहंकारी हो जाते हैं। सन्यासी अक्सर अहंकारी हो जाते हैं। जिन्होंने कुछ छोड़ा है वह छोड़ने के दंभ से भर जाते हैं। जिन्होंने उपवास कर लिया है वह उस दम से भर जाते हैं। जो धूप में खड़े रहे हैं वह उस दंभ से भर जाते हैं। अहंकार के बड़े सूक्ष्म रास्ते हैं। धन पकड़ो तो भर जाता है, धन छोड़ो तो भर जाता है। और यह अहंकार हमारे आत्म अज्ञान का मूल आधार है। जब तक हम 'मैं' से भरे हैं, तब तक हम एक दुनिया बनाते रहेंगे जो सपनों की होगी। 'मैं' सपने देखने में बड़ा खुश होता है। सपने पूरे करने में 'मैं' तो और भी खुश होता है। बड़े बड़े सपने बनाने में और पूरे करने में खुश होता है। इस 'मैं' के आसपास जो हमने दुनिया बनाई है 'इगो सेन्ट्रीक' वह जो 'मैं' के आसपास ग्रह उपग्रह बनाये हैं, वे सब हमारे सपनों के बबुले हैं। उनके लिये हम जन्म से लेकर मृत्यु तक श्रम करते हैं। उनके लिये हम जन्म से लेकर मृत्यु तक लड़ते हैं। ईर्ष्या करते हैं, प्रतिस्पर्धा करते हैं, हिंसा करते हैं, हत्या करते हैं, मरते हैं। दूसरों को नष्ट करते हैं, खुद को नष्ट करते हैं।.....एक नदी की रेत पर कुछ बच्चे खेल रहे हैं। और उन्होंने बहुत से घर रेत के बनाये हैं। किसी बच्चे की टांग किसी के रेत के घर में लग जाती है और घर गिर जाता है और बड़ा कोलाहल मचता है। गाली-गलौच होती है, बच्चे एक दूसरे को मारते हैं, पीटते हैं फिर अपना मकान बनाने लगते हैं। किसी ने बड़ा बना लिया है रेत का घर, उसकी अकड़ देखने जैसी है। किसी का जरा छोटा रह गया है, उसकी पीड़ा भी दिखाई पड़ रही है। कोई बार बार बना रहा है और गिर-गिर जा रहा है, उसकी असफलता उसके चेहरे पर खुद गई है। लेकिन कोई सफल ही होता जा रहा है और रेत का उसका मकान ऊंचा ही ऊंचा उठता जा रहा है। उसकी बात ही और है, वह सब बीच में पहचाना जा सकता है कि कोई सम्राट है, कोई राष्ट्रपति है। फिर सांझ हो गई है और एक भिक्षुक उस झगड़े को खड़े होकर देख रहा है और हंस रहा है। सांझ हो गई है और कोई चिल्लाता है नदी के किनारे आकर, शायद लड़कों की मातायें हैं। उन्होंने जोर से आवाज दी है कि बेटो वापिस लौट आओ, सांझ हो गई, सूरज ढल गया, अब खेल बंद करो। और वे सारे लड़के घर की तरफ भागते हैं। अपने ही घरों को पैरों से रोंदते हुए, गिराते हुए, अध-गिरे, अध बने, छोड़कर वे सब भाग गये हैं और वह भिखारी वहाँ खड़ा हंस रहा है और वह कहता है, इन बच्चों की सांझ आ गई और इन्होंने अपने घर गिरा दिये। जिनके लिये ये लड़े; उनको भी गिरा दिया है। जिनको उन्होंने बनाया; उनको भी गिरा दिया है लेकिन.....आदमी की जिन्दगी की सांझ जब आती है तो बहुत कम आदमी इन बच्चों जैसे समझदार सिद्ध होते हैं। आदमी भी ऐसे ही घर बनाने में लगा हुआ है। मौत आ जाती है, सांझ आ जाती है, सूरज ढल जाता और मौत बुलाने लगती है कि अब लौट आओ। लौटते हैं हम लेकिन बड़े रोते हैं। बड़े चिढ़ाते हैं। मकानों को छाती से दबाते हैं। छिन जाता है, सब लेकिन बड़े प्राणों की पीड़ा होती है। मृत्यु से दुख नहीं होता है। दुःख होता है; जिसे हमने जीवन कहा है, उसे छोड़ने से। मृत्यु जरा भी दुःखद नहीं है। मृत्यु तो बहुत गहरी नींद की भांति आती है। उसमें दुःख नहीं है। मृत्यु में कोई पीड़ा नहीं है अपनी, पीड़ा है जिसे हमने जीवन कहा था, उसे छोड़ने की। सब छूटता है। मुट्ठी खुलती है। वह जो पकड़ थी, क्लिंगिंग थी, वह छूटती है। वह घर हटा, वे प्रियजन गये, वे मित्र छूटे, वे सब छूटने लगे और हम अंधेरे में—खोने लगे। वह छूटने की पीड़ा है, मौत की कोई पीड़ा नहीं है। पीड़ा है जिसे हम जीवन कहते हैं, उसका हाथ से हट जाने की। जिनको हम मकान कहते हैं, उनके गिरने की। सांझ की खबर की अब छोड़के जाना पड़ेगा। वह पीड़ा है। वह दुःख है। लेकिन हम कहते हैं कि मृत्यु में दुःख है। दुःख मृत्यु में नहीं, हमारे सपने से बनाये गये जीवन में दुःख है। क्योंकि सपने टूटेंगे, गिरेंगे, मिटेंगे। इसलिये यह भी मैं आपसे कहूं; जो सपने का जीवन जीता है वह दिन रात दुःख और दुःख और दुःख का ही जीवन

जीता है वह दिन-रात दुख और दुख का ही जीवन जीता है। और जिसे वह सुख कहता है, वह केवल दो दुःखों के बीच में थोड़ा सा विराम है। छोटा सा विराम बस उसका ही नाम है। दो युद्ध होते हैं, बीच के समय को हम कहते हैं शांति का समय। हालांकि होता नहीं है। पहला महायुद्ध खतम हुआ, दूसरा महायुद्ध शुरू हुआ कोई दस पन्द्रह बीस वर्ष बीच में गये, हम कहते हैं वह शांति का समय था। जो जानते हैं वह कहते हैं वह शांति का समय नहीं था। वह केवल दूसरे युद्ध की तैयारी का समय था। पहला युद्ध गया फिर दूसरा युद्ध एकदम से तो नहीं हो सकता। उसकी तैयारी करनी पड़ेगी, पन्द्रह बीस वर्ष तैयारी में लग गये। वह जो दूसरे युद्ध की तैयारी का वक्त था, उसको हम शांति का समय कहते हैं। आज तक मनुष्य के इतिहास में शांति का कोई समय नहीं हुआ। दो युद्धों के बीच में जो विराम का क्षण है, उसे हम शांति कह लेते हैं। ऐसे ही आदमी की जिंदगी में दो दुःखों के बीच में जो छोटा सा संधिकाल है, उसे हम सुख कह लेते हैं। सुख कभी हमने जाना नहीं है। सुख कभी हमने पहचाना नहीं है। वह हम जान भी नहीं सकते हैं। सपने में सुख नहीं हो सकता, सपने में ज्यादा से ज्यादा सुख का आभास हो सकता है। आभास ही होता है हमें। आभास में ही हम जीते हैं। आशा में ही हम दौड़ते हैं। सपने की वास्तविकता सदा आशा में है।

उम्मर खय्याम ने अपने एक गीत में एक बात कही है। कहा है कि मैंने बहुत तरह के लोगों को दौड़ते देखा है। अलग-अलग दौड़े थीं, अलग-अलग सनक उनके मन पर सवार थी, अलग-अलग महत्वाकांक्षा थी। मैंने सबसे पूछा कि कौन तुम्हें दौड़ाता है? अलग-अलग रास्तों पर, अलग-अलग मार्गों पर, अलग-अलग महत्वाकांक्षा की यात्रा पर निकले लोगों ने एक ही उत्तर दिया, आशा दौड़ाती है, आशा दौड़ाती है। वह जो कल की आशा है। सुख सदा आशा में अटका रहता है। इसलिए जब आज बनता है कल, तब दुःख ले आता है। हमारी आशा तब तक और आगे के कल पर सरक जाती है। अगर आप पीछे लौटकर देखें तो अपनी जिंदगी में एक क्षण भी न पकड़ पायेंगे, जब आपने सुख पाया हो। अगर पीछे लौटके देखें तो दुःख ही दुःख दिखाई पड़ेगा, अगर आगे देखें तो सुख की बहुत आशायें दिखाई पड़ेगी। सुख सदा भविष्य में है। दुःख सदा अतीत में है। दुःख सदा भोगे हुए में है, सुख सदा भोगने की आकांक्षा में है। आता कभी नहीं, आता मालूम पड़ता है आकाश की क्षितिज की तरह।। यह पोरबन्दर के चारों तरफ आकाश छू रहा है जमीन को। ऐसा लगता है यही रहा पास, थोड़े बढ़ें और पहुंच जायें। नाव छोड़ें सागर में अभी पहुंच जायें। छोड़ो नाव, पहुंचेगे कभी नहीं। आकाश कभी जमीन को कहीं छूता नहीं है। बस आभासित होता है कि छू रहा है। बस लगता है कि छू रहा है। आप जितने आगे बढ़ेंगे, वह अकाश के छूने की रेखा भी उतनी ही आगे बढ़ जाती है। सुनी है मैंने बच्चों की एक कहानी कि अलाइस नाम की एक लड़की परियों के देश में पहुंच गई है। स्वभावतः लम्बी यात्रा है, थक गई है। जाकर उसने चारों तरफ देखा, उसे भूख लगी थी। थकान बहुत है, प्यास लगी है, थोड़ी ही दूर वृक्षों की घनी छाया में खड़ी परियों की रानी दिखाई पड़ी। उसके पास फलों के, फूलों के, मिष्ठान के ढेर लगे हैं और वह रानी उसे बुला रही है कि आ, आजा। पास ही दिखती है यही वृक्ष की छाया में, वह अलाइस दौड़ी, वह भागी। सुबह था सूरज अभी निकल रहा था। वह अलाइस भागती है, भागती है, थक के गिर पड़ती है। लेकिन, रानी अब भी उतनी दूर है, वह चिल्ला के पूछती है कि रानी यह कैसा तेरा देश है? सुबह से मैं दौड़ती हूं सूरज ऊपर चढ़ आया दुपहर हो गई लेकिन तेरे मेरे फासले में कोई फर्क नहीं पड़ता। वह रानी कहती है पागल यह बातें मत पूछ। इन बातों को जो पूछते हैं, उनकी दौड़ टूट जाती है। तू दौड़। अगर नहीं पहुंच पाती तो और तेजी से दौड़। अगर धीमी दौड़ती है तो नहीं पहुंच पाती, जोर से दौड़ तो पहुंच जायेगी। वह लड़की फिर दौड़ती है। सूरज ढलने लगा, सांझ होने लगी, अन्धेरा उतरने लगा, रानी और उसका फासला उतना ही उतना है। वह रो के चिल्ला के पूछती है कि रानी यह कैसा तेरा देश है? सुबह से सांझ हो गई दौड़ते-दौड़ते, अब तो मैं तेजी से भी दौड़ली, लेकिन फासला

कम नहीं होता। वह रानी हँस रही है, रात के उतरते हुए अन्धेरे में उसकी आवाज गूंजती है, "अलाइस तुझे पता नहीं है, ऐसा हमारे ही देश में नहीं होता कि दौड़ने से कोई न पहुंचता हो, सभी देशों में ऐसा होता है। दौड़ते हैं, लोग, पहुंचते कभी भी नहीं है। तू जिस पृथ्वी से आ रही है, उस पृथ्वी पर भी कोई नहीं पहुंचता है।" बस, दौड़ना दौड़ना, दौड़ना। लेकिन पास ही मालूम पड़ती है आशा वह रही। दौड़ते चले जाते हैं। सुख सदा आशा में है, दुख सदा अनुभव में है। यही हमारे जीवन की कथा है। यह स्वप्न का परिणाम है। इससे ठीक उल्टे सत्य की कथा है। सुख अनुभव में, दुख मिथ्या हो गया। स्वप्न में दुख सत्य है और सुख सदा आशा है। एक सपना, एक झूठ, सुख सदा मालूम पड़ता है मिलेगा, मिलता नहीं है। जैसे ही जिन्दगी सत्य पर खड़ी होती है, वैसे ही सब बदल जाता है। सुख हो जाता है अनुभव, उस अनुभव का नाम ही आनंद है और दुख हो जाता है मिथ्या। वह न कभी था, न है, न होगा। वह था ही नहीं। वह सिर्फ हमारे अहँकार की उत्पत्ति थी। वह हमने अपने को नहीं जाना इसलिए पैदा हुआ था। वह ऐसे ही था जैसे कोई आदमी एक लकड़ी को पानी में डाल दे, सीधी लकड़ी पानी में तिरछी दिखाई पड़ने लगती है। होती नहीं है तिरछी, बाहर निकालें फिर सीधी हो जाती है। सीधी होती नहीं क्योंकि, वह तिरछी हुई ही नहीं थी। लेकिन पानी में तिरछी दिखाई पड़ने लगती है। पानी के मीडियम और हवा के मीडियम में फर्क होने से, किरणों के मोड़ पड़ जाने से वह लकड़ी पानी में जाकर तिरछी दिखाई पड़ने लगती है। होती नहीं कभी। अहंकार के मीडियम में हमारा जो प्रवेश है, वह हमें सपनों में ले जाता है और सब तिरछा हो जाता है। वहाँ सब दुख हो जाता है। अहँकार के बाहर निकलते ही सब सुख हो जाता है। और ऐसा नही है कि फिर हमें लगता कि दुख मिट गया है, ऐसा लगता है कि कैसे हम पागल हैं कि जो दुख था ही नहीं, वह भी दिखाई पड़ता था। अहंकार के माध्यम को समझ लेना जरूरी है।

एक मित्र ने पूछा है कि मूल आधार क्या है जिन्दगी के असत्य का? अहंकार। इस शब्द को ठीक से समझ लेना जरूरी है। यह मैं, यह मैं का भाव वह आधार है। उस आधार पर तो सब खेल रचा जाता है। वह बेसिक फाल्सहुड है। वह बुनियाद ही झूठ है जिस पर हम बाकी सारे झूठ के भवन को खड़ा करते हैं। जिस दिन कोई अपने मैं को नीचे खींच लेता है, सारा भवन गिर जाता है। इस मैं को समझना जरूरी हैं। यह कहां है? यह क्या है? यह कैसा है? यह कैसे निर्मित होता है, कैसे विकसित होता है। और यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जो खोजने जाता है, वह हैरान हो जाता है। क्योंकि खोज में वह अहँकार को कभी पाता ही नहीं कि कहां है, कैसा है, क्या है। जब तक खोजने नहीं जाता तभी तक अहंकार है। एक भिक्षु कोई चौदह वर्ष पहले भारत से चीन गया। नाम था बोधि धर्म। जब वह चीन गया तो वहाँ का सम्राट 'वु' उससे मिलने आया। वह सम्राट 'वु' ने बोधि धर्म को कहा कि मैं बड़ा परेशान हूं, अपने अहंकार से मैंने सब शास्त्र छान डाले, मैंने सब शास्त्रीयों के चरणों की धूल ली। मैं मंदिर-मंदिर, मस्जिद-मस्जिद गांव-गांव, जहाँ मुझे खबर मिली, जहां मुझे पता चला कि कोई जानता होगा, वहां मैं हो आया हूं, लेकिन कहीं मेरा वह अहंकार नहीं मिटता और सभी जगह यह कहते हैं कि अहंकार को मिटाओ तो सब ठीक हो जाये। इस अहंकार का मैं कैसे मिटाऊँ? उस फकीर ने कहा कल सुबह चार बजे आ जाओ। मैं मिटा दूंगा। वह राजा बहुत हैरान हुआ, क्योंकि, इतनी मुश्किल हो गयी मिटाते-मिटाते नहीं मिटा और यह फकीर कहता है कि सुबह चार बजे आ जाओ, मैं मिटा दूंगा। उसे भरोसा नहीं हुआ। उसने कहा क्या कह रहे हैं आप? आप मिटा देंगे! उस फकीर ने कहा कि आप चार बजे सुबह आओ बात में बात करूँगा पहले मिटा लेंगे। जब वह सीढ़ियां उतर रहा था, मन अविश्वास से भरा था कि यह आदमी पागल तो नहीं है। चार बजे रात फिजूल भटकवायेगा तो नहीं। तभी उस फकीर ने जोर से चिल्लाकर कहा सुन सम्राट अकेले मत आ जाना, अहंकार को साथ लिये आना, नहीं तो मैं मिटाऊँगा क्या। उस सम्राट ने कहा कि यह पक्का पागल मालूम पड़ता है। जब मैं आऊँगा तो अहंकार तो आयेगा ही, इसमें बात क्या कहने की। लेकिन फिर भी

सोचा कि आने में हर्ज भी क्या है, आदमी कुछ अजीब है। लेकिन देखें। चार बजे सम्राट आ गया। वह बोधिधर्म नंगी तलवार लिये दरवाजे पर ही खड़ा था। सम्राट थोड़ा डरा भी। अकेला ही आया था। उसने सोचा कि अहंकार न मिटाकर कहीं मुझे ही न मिटा दे, यह आदमी तो पागल मालूम पड़ता है। तलवार किसलिए लिये खड़ा है। बोधिधर्म ने कहा आ गये, अहंकार कहां है ? मैं तलवार बिलकुल घिस के तैयार रखा हूं। बताओ और खतम करूं। सम्राट ने कहा : आप भी पागल मालूम पड़ते हैं ! अहंकार कोई ऐसी चीज तो नहीं कि मैं पकड़कर आपको बता दूं कि यह रहा। अगर ऐसा मुझे हो मिल जाता तो मैं ही काट डालता। उस फकीर ने कहा : मुझे मत बताओ, तुम खुद तो देख सकते हो ! बैठो मेरे सामने, आँख बन्द करो और भीतर खोजो कि अहंकार कहां है। वह 'मैं' का भाव कहाँ है और मिल जाय भीतर तो मुझसे इतना कह देना कि मिल गया, यह रहा, खतम कर देंगे। सम्राट डरा हुआ, उस भिखारी के पास, उस अंधेरी रात में, उस निर्जन वीरान में बैठ गया। वह तलवार लिये सामने ही बैठा है भिक्षु। वह सम्राट आँख बंद करके भीतर खोजने लगा। कहीं कोई मिलता नहीं, खोजता है—खोजता है। कहां मिले, मैं कहीं रखा है भीतर ? खोजता है-खोजता है-वह भिक्षु कहता है शीघ्रता करो, कहीं सुबह न हो जाय। अंधेरे में खोजलें तो अच्छा कहीं दिन जाग न जाय। कहीं दूसरे अहंकार यहां आकर मौजूद न हो जायें। तुम खोजो, जल्दी करो। वह बहुत खोजता है, बहुत खोजता है-बहुत खोजता है, फिर सुबह का सूरज निकलने लगा। सुबह की पहली किरणें उस सम्राट के चेहरे पर पड़ती हैं, वह अपूर्व शांति में बैठा है। वह भिक्षु उसे हिलाता है। वह सम्राट कहता है मत हिलाओ, मत हिलाओ मैं बहुत शांति में हूं। वह भिक्षु कहता है अहंकार कहां है ? वह सम्राट कहता है कि बड़ी भूल हुई मुझसे कि मैंने कभी भीतर झांककर नहीं देखा। भीतर तो कोई अहंकार नहीं है। भीतर तो अहंकार है ही नहीं। अब मैं आपसे कहूं कि मेरे अहंकार को मिटा दें, वह है ही नहीं, वह मिट ही गया। अहंकार की खोज ऐसे ही अद्भुत है, जैसे मैं आपको दिया दे दूँ और आपसे कहूं, घर में जाकर अंधेरे को खोजें। आप दिया भीतर ले जायें, अंधेरा वहां नहीं है। दिया बाहर ले आयें अंधेरा वहां है। बड़ी मुश्किल हो गयी है। अंधेरे को खोजने जाते हैं दिया लेकर तो वह नहीं मिलता है। बाहर आ जाते हैं दिया लेकर,वह भीतर है। ठीक अहंकार हमारे भीतर अंधेरे का नाम है। जब तक हम भीतर अपनी चेतना को नहीं ले जाते, तब तक वह है। जैसे ही हम चेतना के दिये को, कॉन्ससनेस को, होश को भीतर ले जाते हैं, ध्यान को, कोई भी नाम दें—जैसे ही हम भीतर मोड़ते हैं अपनी चेतना को और खोजते हैं, कहां है-कहां है, अंधकार खो गया। अगर इसे ठीक से समझें तो चेतना की पीठ जहां पड़ती है और उसकी जो छाया बनती है, उसका नाम ही अहंकार है। और जब हम चेतना को भीतर मोड़कर देखना शुरू करते हैं, वह कहीं पाया नहीं जाता है। इसलिये जो आदमी भीतर देख सकेगा वह अहंकार के बाहर हो जायगा। लेकिन हम सिर्फ बाहर देखना ही जानते हैं। हमारी आँखें फिक्स्ड हो गई हैं, जड़ हो गई हैं। उनका फोकस ठहर गया है। वह भीतर देखना भूल गईं, बस वह बाहर ही देखती रहती हैं। और अगर हमसे कोई कहे भीतर देखो तो हम कहते हैं क्या करें; आँख बंद कर लें ? आँख बंद कर लेते हैं-तब भी हम बाहर ही देखते हैं। आँख बंद करने से कोई भीतर नहीं देख पाता क्योंकि, आँख बंद करके भी जो हम देखते हैं वह बाहर के ही दृश्य हैं। बाहर के मित्र, प्रियजन, दुकान, मकान, वह सब बाहर का फिर भीतर दिखाई पड़ता है लेकिन, वह हैं चित्र बाहर के। हमारी जन्मों-जन्मों की आदत बाहर देखने की हो गई है। हम यह भूल ही गये हैं कि भीतर देखने का भी कोई आयाम है, कोई दिशा है। भीतर भी देखा जा सकता है। और जिस दिन कोई भीतर देख सकता है, उसी दिन पाता है अहंकार नहीं है। फिर जो शेष रह जाता है वही आत्मा है। यह आत्मज्ञान ही आधार बनता है सत्य जीवन के प्रगठन का। लेकिन भीतर आँख को कैसे मोड़ें, इस संबंध में अंतिम बात आपसे करूं।

भीतर कैसे जायें, भीतर आँख को कैसे मोड़ें ? सुना है मैंने, एक सूफी फकीर हुई है राबिया। वह अपने घर के बाहर कुछ खोज रही है। पड़ौस के लोग आ गये हैं और उससे पूछते हैं, क्या खोजती हो ? बूढ़ी औरत है, सोचते हैं कुछ सहायता कर दें। उस बुढ़िया ने कहा कि मेरी सुई खो गई है, उसे मैं खोजती हूं। किसी ने यह भी न पूछा कि कहां खो गयी है। वह भी खोजने लग गये। उन नासमझों में से एक ने भी न पूछा कि सुई कहाँ खो गई है। वे सब खोजने लग गये। हम भी होते तो शायद यही करते। क्योंकि, हम भी ऐसा नहीं सोचते कि किसी चीज को खोजने के पहले यह पता लगा लेना जरूरी है कि वह खोयी कहां है ? बस खोजने लग जाते हैं। वे सारे लोग खोजने लगे फिर सूरज ढलने लगा तब एक आदमी को थोड़ी बुद्धि आई। उसने उस बुढ़िया से पूछा कि सूरज डूबने के करीब है, अब सुई का मिलना बहुत मुश्किल हो जायगा। छोटी सी सुई, अंधेरा बहुत बड़ा है, रास्ता भी चौड़ा है, तू ठीक से बता दे गिरी कहां है ? तो उस बूढ़ी औरत ने कहा : यह मत पूछो तो अच्छा है। तब तो वे सब रुक गये। उन्होंने कहा यह क्या कहती है मत पूछो तो अच्छा ! तो हमें पागल बना रही हो ! सुई कहां गिरी है ? तो उस बूढ़ी औरत ने कहा कि यह बड़ी दुःखद बात है कि मैं तुम्हें बताऊँ कि सुई तो मेरे घर के भीतर गिरी है। लेकिन रोशनी न होने की वजह से मैं बाहर खोज रही हूं। घर में दिया नहीं है, गरीब औरत हूं और अंधेरे में खोजा कैसे जाय ? इतना तो तुम भी मानोगे कि अंधेरे में खोजना बेकार है। इसलिये मैं रोशनी में खोज रही हूं। उन गांव के लोगों ने कहा कि तेरा दिमाग तो नहीं फिर गया ? कितनी ही रोशनी हो बाहर, हजार सूरज आ जायें तो भी सुई अगर नहीं खोई है वहां तो मिलेगी कैसे ? पर उस बूढ़ी औरत ने कहा कि तुम्हारा दिमाग तो खराब नहीं है ! कितनी ही सुई खो गई हों अंधेरे में, अगर अंधेरा वहाँ है तो खोजने से मिलेगी कैसे ? तब उस गांव के लोगों ने कहा कि तेरी बात थोड़ी ठीक है, हमारी बात भी थोड़ी ठीक है, इन दोनों के बीच कुछ तालमेल बिठालना चाहिये। या तो तू सुई को बाहर ले आ और या फिर हम प्रकाश को भीतर ले चलें। तो उस औरत ने कहा कि अगर मैं सुई खोज ही सकती तो उसे बाहर ले आती। फिर तो खोजने की जरूरत ही न थी। इसलिये कृपा करके हम प्रकाश को ही भीतर ले चलें। यही रास्ता है और कोई रास्ता नहीं है। हमारी भी स्थिति वैसी ही है। आँख की रोशनी बाहर पड़ती है, हाथ बाहर फैलते हैं, पैर बाहर चलते हैं, कान बाहर सुनते हैं, नाक बाहर सूंघती है, जीभ बाहर स्वाद लेती है, हमारी सारी इन्द्रियाँ बहिर्मुखी हैं। जरूरत भी है। क्योंकि इन्द्रियाँ बनाई गई हैं—बाहर के संबंध के लिये। इसलिये स्वभावतः वह बहिर्मुखी हैं। जब हम घर के बाहर निकलने के लिये कोई दरवाजा बनाते हैं, घर के बाहर निकलने के लिये ही बनाते हैं तो वह बाहर की तरफ खुलता है। स्वभावतः जीवन को बाहर से संबंधित होने के लिये इन्द्रियाँ मिली हैं। तो सारी इन्द्रियाँ बाहर के लिये खुलती हैं। लेकिन इन्द्रियों के पीछे जो बैठा है, इन्द्रियों के बाहर खुलने की वजह से हम उसको भी बाहर ही खोजने लगते हैं। उसको भी हम बाहर खोजने लगते हैं तब भूल हो जाती है। धर्म का प्रारम्भ इसी भूल को सुधारने के ख्याल से हुआ कि हम भीतर खोज सकें। लेकिन हमारी खोज इन्द्रियाँ चूंकि बाहर हैं, हम पूछते हैं; भीतर हम कैसे खोजें ? आँख भीतर कैसे खुले ? हाथ भीतर कैसे जायें ? कान भीतर कैसे खुलें ? जैसे हाथ का भीतर जाना मुश्किल है, वैसे ही आँख का भी भीतर जाना मुश्किल है। तब क्या करें ? तब एक रास्ता है। समस्त धर्म, समस्त ज्ञान, समस्त शास्त्रों का सार इस छोटी सी बात में है कि इन्द्रियाँ तो भीतर नहीं जा सकती ही हैं, लेकिन, अगर सारी इन्द्रियाँ बाहर के प्रति बंद हो जायें तो जो भीतर है वह भीतर रह जाता है और जो बाहर है वह बाहर रह जाता है। अगर मेरे मकान का दरवाजा बंद हो जाय, मैं एक दरवाजे पर खड़ा हूं या खिड़की पर खड़ा हूं और बाहर देख रहा हूं। अब मैं—कहता हूं कि मेरी तो गरदन जाम हो गई है, लकवा खा गई, मैं तो पीछे लौट कर देख ही नहीं सकता। मैं तो बाहर ही देख सकता हूं। लेकिन अगर खिड़की बंद हो जाय तो मैं क्या करूंगा ? खिड़की बंद होते से मुझे भीतर देखना ही

पड़ेगा। देखने की क्षमता मेरी है। आँख से भी मैं ही देख रहा हूं। और अगर कभी मैं आँख के पीछे मौजूद नहीं होता तो आँख देख नहीं पाती। अब एक लड़का हॉकी खेल रहा है। उसके पैरों में चोट लग गई है और खून बह रहा है। लेकिन जब तक वह खेल रहा है, उसे पता नहीं चल रहा है। खेल बंद हुआ और वह पैर पकड़ कर बैठ गया और अब वह रो रहा है कि मेरे पैर में चोट लग गई, बहुत खून गिर गया। उससे पूछो कि चोट तो बहुत देर हो गई लगे, तुझे पता अब क्यों चला ? तो वह कहेगा; मेरा ध्यान उस तरफ न था। ध्यान हॉकी के तरफ था, खेल की तरफ था। अगर ध्यान उस तरफ न था तो पैर की चोट का पता ही न चलता। आप रास्ते पर जा रहे हैं। आपके मकान में आग लग गई है, किसी ने कह दिया, फिर रास्ते में किसी ने आपको नमस्कार किया, भला वह म्युनिसिपल के चेयरमेन क्यों न हो, आप-को फिर दिखाई नहीं पड़ता। कल वह फिर मिलेंगे, कल वह कहेंगे कि क्या हो गया था आपको ? रास्ते पर जा रहे थे—तब मैंने नमस्कार किया था। आप कहेंगे; मेरे मकान में आग लग गई थी, ध्यान मेरा उसी तरफ था। आँखें तब भी थीं, दिखाई वह आदमी तब भी पड़ा होगा, लेकिन फिर भी दिखाई नहीं पड़ा। ध्यान नहीं था। ध्यान इन्द्रियों से बाहर जा के बाहर देख रहा है। अगर सारी इन्द्रियां बंद हो जायें बाहर के प्रति, तो ध्यान कहां जायेगा ? जाने का कोई रास्ता न होगा तो भीतर लौट पड़ेगा। भीतर घूमेगा। आंतरिक परिभ्रमण करेगा। अंर्तयात्रा करेगा और उसे जानेगा जो भीतर है। ध्यान है ज्ञान का माध्यम, आँख नहीं, कान नहीं, हाथ नहीं, इनके पीछे से ध्यान जान रहा है। यह सब नहीं जान रहे हैं। इन सब को बंद कर दिया जाय तो भी ध्यान जानेगा। लेकिन बाहर जाने का कोई द्वार न रहेगा तो उसे जानेगा जो भीतर है। हम चौबीस घंटे ध्यान से ही जान रहे हैं। एक छोटी सी कहानी से आपको समझाऊं।

मैंने सुना है कि एक सन्यासी को जीवन भर खोजते-खोजते सत्य थकान आ गई है। उसके गुरु ने कहा कि अब तू बहुत थक गया और अब शायद तेरे खोज की सँभावना नहीं रही तो आखरी तौर से मैं तुझे एक जगह भेजता हूं। देश का सम्राट है, तू उसके पास चला जा। उस सन्यासी ने कहा कि मैं बड़े सन्यासिओं के पास रह कर भी कुछ न जान पाया, सम्राट क्या बतायेगा ? उसके गुरु ने कहा : आखिरी परीक्षा और इस आदमी के पास भी जा। वह गया। जब सांझ वह पहुंचा तो देखा कि सम्राट दरबार में बैठा है और वेश्यायें नाच रहीं और शराब के प्याले ढल रहे हैं। वह सन्यासी ने कहा कि हद्द हो गई ! बड़े तपस्वियों के पास सत्य न मिला, बड़े ज्ञानियों के पास अनुभूति न मिली, जो जानते थे उनके पास प्रकाश की किरण न मिली और इस अज्ञानी के पास मिलेगा मुझे ! लेकिन अब रात कम से कम ठहरना ही होगा। इतनी दूर चलके आया हूं। सम्राट ने बिठाया, खाना खिलाया फिर उससे पूछा, कैसे आये हो? उसने कहा : अब बताना बेकार है। आया तो था सत्य की खोज में लेकिन, जो देखा; अब उससे कुछ प्रश्न पूछना उचित नहीं है। सम्राट ने कहा कि कुछ गलत देखा ? उसने कहा : गलत ! अब इससे ज्यादा गलत और क्या होगा ? इसको गलत कहना भी ठीक नहीं है। शराब पी जा रही है, वेश्यायें नाच रही हैं, आप बीच में जमे हैं ! अब मैं आपसे क्या पूछूं ? वह सम्राट ने कहा कि कल और रुकें, कल एक बहुत बड़ा नृत्य हो रहा है। देश की सबसे बड़ी वेश्यायें आ रही हैं। उसने कहाकि आप कृपा करें, अभी मैं चला जाऊं रात ही। मैं यहाँ वेश्याओं का नृत्य देखने नहीं आया। सम्राट ने कहा : नहीं, वेश्याओं का नृत्य देखने का सवाल नहीं है। लेकिन अब आप जा नहीं सकते। सिपाहियों से कहा : दरवाजा बंद कर दो। उस सन्यासी ने कहा : ये आप क्या कर रहे हैं ? क्या कोई जबरदस्ती मुझे नृत्य देखना पड़ेगा ? सम्राट ने कहा : नृत्य नहीं देखना है लेकिन, ... नृत्य में कुछ आपको करना भी पड़ेगा। उसने कहा : आप क्या कह रहे हैं, आपका दिमाग ठीक है ? मैं सन्यासी आदमी हूं। मेरा कोई संबंध संगीत से नहीं, वेश्याओं से नहीं है। मैं क्या करूंगा ? सम्राट ने कहा : ये नहीं, कल जब वह नाचेगी, उस जैसी सुन्दर स्त्री देश में नहीं है। हजारों लोग देखने

आ रहे हैं । जब वह नाचेगी तो—तुम्हें एक तेल का दिया हाथ में रखकर, उसके चारों ओर एक चक्कर पूरा करना है। और अगर एक बूंद भी तेल दिया से गिर गया तो दो तलवारें तुम्हारे पीछे, दो तलवारें तुम्हारे आगे होंगी वह तुम्हारी गरदन साफ कर देंगी । वह सन्यासी ने कहा : लेकिन इस सबसे मतलब क्या है ? मैं सत्य की खोज में आया हूं ! उस सम्राट ने कहा कि सत्य की खोज होगी पीछे, कल यह दिये का तेल बचाना है। फंस गया गरीब आदमी। भाग सका नहीं। मजबूरी थी। कल देश से दूर-दूर से लोग उस वेश्या को देखने आयेंगे । सच ही जो भी था वह उसी की ही चर्चा कर रहा था। और उस सन्यासी के हाथ में तेल भरा हुआ, जलता हुआ दिया जिसमें तेल जरा छलक जाय तो बूंद गिर जाय, पीछे दो तलवारें हैं, आगे दो तलवारें हैं। उसी वेश्या का चक्कर लगाना पड़ा। कितनी बार मन हुआ कि एक बार देख लूं। साधारण गृहस्थ होता तो शायद इतना मन न भी होता, सन्यासी था मन होना और भी स्वाभाविक है। लेकिन वह दिये से एक बूंद तेल न गिर जाय, नहीं तो गर्दन गई। गरदन की कीमत पर तो सन्यासी भी देखने को राजी नहीं होगा। पूरा चक्कर लगा रहा है । चारों तरफ प्रशंसा की बातें चल रही हैं कि ऐसा सौंदर्य लोगों ने नहीं देखा। वे सब उसके कानों में सुनाई पड़ती हैं लेकिन, नहीं सुनाई पड़ती। उस वेश्या के घुंघर बज रहे हैं, वे उसे नहीं सुनाई पड़ते । चारों तरफ लोग दिखाई पड़ते हैं लेकिन, नहीं दिखाई पड़ रहे हैं । उसे सिर्फ दिया दिखाई पड़ता है । उसमें तेल दिखाई पड़ता है। दो तलवारें सामने, दो तलवारें पीछे हैं, वह पृष्ठभूमि में मालूम होती हैं। वह चक्कर लगा रहा है। बड़ा घेरा है और जरा सी भूल; एक बूंद ही गिर जाय तो सत्य तो दूर—स्वयं की हत्या हो जाय। वह पूरा चक्कर लिया है। रात को सम्राट ने उससे पूछा, वेश्या दिखाई तो नहीं पड़ी ? उसने कहा : आप भी पागल हो गये हैं ! वेश्या कैसे दिखाई पड़ती ! ध्यान तो दिये के तल पर था। नाच नहीं देखा ? सम्राट ने कहा। उसने कहा : कैसी बातें कर रहे हैं आप ! नाच देखता कि अपनी मौत देखता। तो सम्राट ने कहा कि कल जब दरबार में वेश्यायें नाच रहीं थीं और शराब ढाली जा रही थी, तब मेरा ध्यान भी अपनी मौत पर था। न तो वेश्याओं पर था, न शराब पर था। मौजूद था जरूर। तुम भी मौजूद थे कल उस वेश्या के नृत्य में, मैं भी मौजूद था लेकिन, ध्यान मौजूद नहीं था। सम्राट ने उससे कहा : जिस भांति दिये के तेल पर ध्यान चला गया, क्या कृपा करोगे इसी भांति दिये के तेल का भी ध्यान छोड़ दो और भीतर ध्यान को जाने दो। सन्यासी ने कहा : कल मुझे अद्भुत अनुभव जरूर हुआ है। इतना एकाग्र मैं कभी भी न हुआ था, जितना कल हुआ। और जब दिये के तेल पर रुक सका सब भूल कर, तो दिये के तेल को भी भूला जा सकता है।

जिस दिन हम अपनी इन्द्रियों को बाहर से सब भांति शिथिल कर लेते हैं और ध्यान की जो यात्रा इन्द्रियों के द्वार से बाहर हो रही है, वह जो ध्यान की सरिता बही जाती है इन्द्रियों से उसे समेट लेते हैं भीतर, सब द्वार बंद, ध्यान सिमटा हुआ भीतर तब जिसे हम जानते हैं, वह आत्म-ज्ञान है । और उस क्षण में वहाँ कोई अहंकार नहीं जाना जा सकता। अहंकार इन्द्रियों के अनुभव का जोड़ है अहंकार आत्म अज्ञान है और अहंकार आत्मा को न जानने से पैदा हुआ—अंधकार है। अहकार की कोई वास्तविक सत्ता नहीं है। जब तक हमने नहीं जाना तभी तक अहंकार है। अब यह बड़ा विरोधी वचन है। जब तक हमने नहीं जाना है-तभी तक अहंकार है और जिस दिन हमने जाना उसी दिन अहंकार नहीं है। अगर ठीक से समझें तो अज्ञान और अहंकार पर्यायवाची है। शब्द कोष में नहीं है। जीवन के कोष में हैं। शब्द कोष में तो अज्ञान का अलग अर्थ है, अहंकार का अलग अर्थ है। लेकिन जीवन के कोष में अज्ञान और अहंकार के दो अर्थ नहीं हैं। एक ही अर्थ है।

जीसस सूली पर लटकाये जा रहे थे जिस दिन तो जिस आदमी की आज्ञा से वे सूली पर लटकाये

गये, उस आदमी का नाम था पायलेट । वह रोमन गर्वनर था । उसके सामने ही सूली लगी । वह जीसस को देखने आया था । जीसस को देख कर उसे लगा कि आदमी तो बहुत भोला भाला और सरल मालुम पड़ता है । लेकिन देश के सभी पुरोहित इस पक्ष में हैं कि इसको सूली पर लटका दिया जाय । असल में पुरोहित भोले भाले, अच्छे लोगों के सदा खिलाफ रहते है । क्योंकि भोले और भले लोग अगर दुनियां में बढ़ जायें तो पुरोहित की फिर कोई जरूरत नहीं रह जाती । पुरोहित की, महात्मा की, साधुकी, सन्यासी की, गुरु की जरूरत, अच्छे-भले लोगों की कमी होने के कारण है । अगर अच्छे भले लोग बढ़ जाऐं तो वे बेकार हो जायें । जैसे किसी गांव में स्वथ्य लोग बढ़ जायें तो डाक्टर बेकार हो जायें । डाक्टर की जरूरत बीमारों के लिये है । अगर कोई ऐसी तरकीब हो कि उससे सब बीमार ठीक हो सकें तो उस तरकीब को सब डाक्टर दबाने की कोशिश करेंगे । क्योंकि अगर वह तरकीब प्रगट हो जाय तो डाक्टर का क्या होगा ! और बड़े मजे की बात है, ऐसे डाक्टर मरीज को ठीक करने की ही कोशिश करता है । लेकिन मरीजों को ठीक करने की कोशिश नहीं करता है, मरीज को । मरीज ठीक हो लेकिन बीमारी कभी ठीक नहीं होनी चाहिये । अगर बीमारी ठीक हो जाय तो बहुत मुश्किल हो जाय । इसलिये पैसे वाले मरोज का ठीक होना जरा मुश्किल होता है । कठिन हो जाता है । क्योंकि उसकी बीमारी बहुत लाभदायक है । तो पायलेट के पाछे पुरोहित पड़े थे कि जीसस को लटकाओ सूली पर । उनका दबाव इतना था, पुरोहितों की ताकत इतनी थी कि राज्य मजबूर हो गया और पायलेट ने आज्ञा दी । लेकिन वह देखने आया कि जिस आदमी को सारे पुरोहित मारने को तैयार हैं, उस आदमी में कुछ होना जरूर चाहिए । वह देखने आया । जब उसने जीसस को देखा और उनके भोले चेहरे को और उनकी आंखों में झाँका तो उसे लगा कि आदमी तो कुछ और तरह का है, सूली पर लटकाने योग्य नहीं है । लेकिन आज्ञा तो हो चुकी थी । उस पायलेट ने सूली पर चढ़ते हुये जीसस से एक सवाल पूछा । वह सवाल जो जिंदगी का सबसे कीमती सवाल है । उसने जीसस से कहा: वाट इज ट्रथ ? सत्य क्या है ? जीसस ने कोई उत्तर नहीं दिया, सिर्फ सूली की तरफ आखें उठा दीं । पायलेट समझा नहीं । समझना बहुत मुश्किल है । जीसस ने कहा कि सूली पर चढ़ जाओ तो सत्य मिल जाय, मिट जाओ तो सत्य मिल जाय । यह कहा नहीं, सिर्फ आंखें उठा दीं । फिर हंसते हुऐ वे सूली पर लटक गये । पायलेट फिर भी नहीं समझा । असल में मैं जब तक सूली पर न लटक जाय, मैं जब तक कट न जाय, मिट न जाय, टूट न जाय, बिखर न जाय तो जीसस का एक वचन है, "धन्य हैं वे लोग जो मिटने को तैयार है क्योंकि परमात्मा की सारी संपदा उनकी होगी" और जीसस का दूसरा वचन है "वे जो अपने को बचायेंगे मिट जायेंगे और वे जो अपने को मिटा देते हैं, बचा लिये जायेंगे"। जीसस सूली पर लटक गये अब उनका पादरी गांव–गांव में है वह अपने गले में एक सोने की सूली लटकाये रहता है । बड़े मजे की बात है । जीसस का गला सूली पर लटका, उनका पादरी गले में सूली लटकाये हुऐ है । आदमी की चालाकी की कोई सीमा नहीं है । गला सूली पर लटके तो बात और है, और गले में छोटी सी सूली लटके वह भी सोने की ! लेकिन धोखा देने में आदमी का कोई मुकाबला नहीं है । सोने की एक सूली लटकाये हुये आदमी अपने को कह रहा है; मैं जीसस का भक्त हूं । मैं भी सूली लटकाये हुये हूं, सोने की है, कीमती है बहुत, गलेमें लटकी है । आभूषण बन गई है । सूली भी आभूषण ! जीसस का गला लटक गया, इनके गले में आभूषण लटका हुआ है । और जीसस ने कहा मिटाओ अपने को लेकिन यह सोने की सूली इनके अहंकार का आभूषण है । यह अपने को और बना रहे हैं । सारे धर्मों का सार एक है कि मैं मिट जाय । जैसे बूंद सागर में मिटती है तो सागर हो जाती है, ऐसे मैं मिट जाय तो प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा के साथ एक हो जाता है । यह मैं की जकड़ और ग्रंथी उसे तोड़े रखती है, दूर रखती है, फासले पर रखती है ।

लेकिन ..... बीज को कैसे पता चले कि अगर वह टूट जाय तो वृक्ष हो सकता है । बूंद को कैसे पता

चले कि अगर वह गिर जाय तो सागर हो सकती है। बीज को कैसे मालूम हो कि मैं अगर अपने को बचाऊँगा तो सड़ जाऊंगा और अपने को मिट जाने दूं जमीन में और मिट्टी में धूल हो जाने दूं, एक हो जाने दूं तो मेरे भीतर से एक अंकुर पैदा हो सकता है। जिसमें बहुत सुगंध, बहुत पत्ते, बहुत शाखायें, बहुत छाया, बहुत फल पैदा हो सकते हैं। एक बीज वृक्ष हो सकता है यह बीज को कैसे पता चले? एक आदमी परमात्मा हो सकता है यह आदमी को कैसे पता चले? लेकिन और बीज वृक्ष हो गये हैं, अगर बीज अपने चारों तरफ देखें तो उसे पता चलेगा कि बहुत वृक्ष हो गये हैं, बहुत बीज अंकुरित हो रहे है, बहुत बीज अभी टूट रहे हैं। अगर बीज अपने चारों तरफ देखे तो ही उसे पता चल सकता है कि बीज टूट कर कुछ और हो सकता है। अगर हम भी अपने चारों ओर देखें तो हमें भी पता चल सकता है कि बहुत कुछ हो सकता है। लेकिन हम देखते नहीं हैं। न कृष्ण को देखते हैं, न राम को, न क्राइस्ट को, न मोहम्मद को, न बुद्ध को, हम आँख बन्द करके उनकी पूजा करते हैं,—देखते वेखते नहीं है। पूजा किये और भागे। पूजा एक छुटकारे का रास्ता है कि झंझट मिटी। जल्दी दो फूल रखे, आँख बंद की, और गये। लौट कर फिर नहीं देखते क्योंकि, ज्यादा देर रुकना भी खतरनाक है। अगर यह पता चल जाय कि यह आदमी मिट कर ऐसा हो गया तो हमको भी मिटना पड़ेगा। तो हम कहते हैं, आप हो गये, आप भगवान हैं, हम साधारण आदमी हैं। कहां हम, कहां आप! आप हो सकते थे हम कहां हो सकते हैं, हम पतित हैं, हम सिर्फ प्रार्थना ही करेंगे। बस; तब कठिनाई खड़ी हो जाती है। काश! कृष्ण, बुद्ध, महावीर सब हमारे लिये अपमान बन जायें, है भी! चुनौती बन जायें, हैं भी! और हमारे प्राणों में ऐसा लगे कि जो इन हड्डी मांस के लोगों में हो सका, वह हमारे भीतर भी हो सकता है। काश! यह संकल्प पैदा हो जाय तो क्षण भर की भी देरी नहीं है कि हमारी बूंद भी सागर के साथ एक हो सके। क्षण भर की देरी नहीं कि हम भी भीतर पहुंच जायें और उसे जान सकें जो सत्य जीवन का द्वार है।

जिन मित्रों को मिटने की आकांक्षा हो, वह सुबह के ध्यान के प्रयोग में आ जायें। मिटने की आकांक्षा हो तो क्योंकि, ध्यान का अर्थ ही बाहर से सब भांति भीतर डूब जाना और जो भीतर डूबा, वह मिटा। एक छोटा सा सूत्र; और अपनी बात मैं पूरी करूंगा। कबीर ने कहा है, "जिन खोजा तिन पाईयां—गहरे पानी पैठ, मैं बौरी खोजन गई—रही किनारे बैठ।" खोजा उन्होंने जो गहरे डूब गये और मैं पागल खोजने गई तो किनारे ही बैठ गई। तो किसी ने पूछा उनसे कि आप किनारे क्यों बैठ रहे? किसने कहा था किनारे बैठें? आप क्यों नहीं कूद गये? आप क्यों नहीं गहरे उतर गये? तो कबीर ने कहा है कि, "जिन खोजा तिन पाइयाँ—गहरे पानी पैठ, मैं बौरी डूबन डरी—रही किनारे बैठ।" मैं डूबने से डर गई इसलिये किनारे बैठ गई। जो डूबने से डरते हों, वह न आयें। जो डूबने की तैयारी रखते हों, वह सुबह आ जायें। बात से काफी नहीं है। बात पर्याप्त नहीं है। बातचीत भी हमारे अहंकार का आभूषण बन जाती है। कुछ बातें मुझसे सुन लेंगे, दूसरों से करने लगेंगे। बस, वह आप के अहंकार का हिस्सा हो जायेगी। नहीं, बात का कोई मूल्य नहीं है। बड़े-बड़े शास्त्र भी हमारे अहंकार के हिस्से बन गये हैं। मेरी बात भी बन जायगी। कुछ करें। कोई संकल्प, कोई छलांग, भीतर कूदने की कोई हिम्मत, तो दूर नहीं है। परमात्मा से ज्यादा निकट और कोई भी नहीं है। और संसार से ज्यादा दूर और कोई भी नहीं है। लेकिन हम संसार की यात्रा कर रहे हैं और परमात्मा की यात्रा का हमें कोई ख्याल नहीं। सुबह जो मित्र ध्यान के लिये आते हैं, वे स्नान करके आयें, बिना कुछ खाये-पिये आयें। और कल तो जो मित्र आते हैं वह केन्द्र की तरफ से पास लेकर आयें। क्योंकि, दर्शक के लिये कल कोई जगह नहीं है। और अगर कोई दर्शक भूल से भी वहाँ आ गया तो उसे बाहर होना पड़ेगा।

मेरी बातों को इतनी शाँति और प्रेम से सुना उससे बहुत अनुगृहीत हूं और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभुको प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

●●●

आचार्य जी की दृष्टि में शिक्षा सूत्री–

आदमी जो है; वह शिक्षा के कारण है और जो नहीं है वह भी शिक्षा के कारण ही है ।

पूरी शिक्षा ईर्ष्या पर, अहंकार पर खड़ी है ।

एक अशिक्षित आदमी ज्यादा प्रेम पूर्ण हो सकता है—

शिक्षित आदमी तरकीबें सीखकर प्रेम को मार देता है ।

एक ऐसी शिक्षा विकसित होनी चाहिये जो अपने आपसे आगे जाने को, अपने को रोज पार करने को और अपने आपको—विकसित करती हो । दूसरे से नहीं जो अपने से तुलना करना सिखाती हो ।

शिक्षा में तुलना मात्र विकृति का आधार है ।

दूसरे को गिराकर ऊपर उठने का आनंद रुग्ण आनंद है ।

चरित्रहीन लोगों से सर्टिफिकेट लेकर चरित्रवान कहलाते हो !

सिर्फ चरित्रहीन लोग इन कागजों से सब कुटिल सीढ़ियाँ पार करते हैं ।

जिस दिन शिक्षक एक-एक व्यवस्था पर प्रश्न करके संदेह पूर्ण शिक्षा देने को समर्थ होगा, उस दिन समाज सुदृढ़ और सुव्यवस्थित होगा ।

शिक्षा की विकृति ने आदमी की हत्या कर दी है ।

शिक्षक मैं उन्हीं को कहता हूं; जो विवेकपूर्ण विद्रोह सिखाता हो ।

शिक्षक का प्रेम ही सच्चा अनुशासन लाता है अपने शिष्य में ।

—संकलन : जयवंती (जूनागढ़)

मैं जो हूँ, सो हूँ

"मैं किसी से बंधा हुआ नहीं हूं, जो मुझे ठीक लगता है—वह मैं कहता हूं । मैं एक निपट व्यक्ति की भाँति जीता हूं । इससे मेरा कोई संगठन नहीं है । और न ही मैं किसी को प्रभावित करके अपने को राजी करना चाहता हूं, मैं जो हूं—सो हूं ।"

—आचार्य श्री के उद्‌बोधन से

नये मनुष्य की रूपरेखा

(आचार्य श्री द्वारा अहमदाबाद में दिया गया प्रवचन)

संकलन : बासंती वाखारिया, (केरा, गुजरात)

मेरे प्रिय आत्मन,

अतीत के इतिहास में क्रांतियाँ होती थीं और समाप्त हो जाती थीं। लेकिन आज हम सतत क्रांति में जी रहे हैं। अब क्राँति कभी समाप्त नहीं होगी। पहले क्राँति एक घटना थी, अब क्राँति जीवन है। पहले क्राँति शुरू होती थी और समाप्त होती थी। अब क्राँति शुरू हो गई है और समाप्त नहीं होगी। अब आने वाले भविष्य में मनुष्यों को सतत क्राँति और परिवर्तन में अंतर रखना होगा। यह एक इतना नया तथ्य है, जिसे स्वीकार करने में समय लगना स्वाभाविक है। यदि हम सौ वर्ष पहिले की दुनिया को देखें तो कोई दस हजार वर्ष तक के लम्बे इतिहास में आदमी कोई एक जैसा था। जैसा था वैसा था समाज के नियम वही थे, जीवन के मूल्य वही थे, नीति एवं धर्म का आदर्श वही था। दस हजार वर्षों में मनुष्य की जिन्दगी के आदर्श में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। इस सदी में आकर सारे आधार हिल गये हैं। और सारी भूमि हिल गई है। जैसे एक ज्वालामुखी फूट पड़ा हो मनुष्य के नीचे, और सब परिवर्तन होने के लिए तैयार हो गया। अब ऐसा नहीं है कि यह परिवर्तन हम समाप्त कर देंगे। यह परिवर्तन जारी रहेगा। और रोज ज्यादा होता चला जायेगा। अब तक हमने जिस मनुष्य को निर्मित किया था, वह एक स्थायी, सुस्थिर समाज का नागरिक था। अब जिस मनुष्य को हमको निर्मित करना है वह सतत क्राँति का नागरिक हो सके इसका ध्यान रखना जरूरी है। भविष्य में मनुष्य की रूप-रेखा या नये मनुष्य की रूप-रेखा के संबंध में सोचते वक्त पहली बात यह सोच लेनी जरूरी है कि परिवर्तन के जगत में जहाँ राज सब बदल जायगा हम कैसी नीति विकसित करें, हम कैसा आचरण विकसित करें ? मनुष्य को फिर से पुनः विचार करना जरूरी हो गया है। महावीर ने, बुद्ध ने, मनु ने, कृष्ण ने और क्राईस्ट ने हमें मनुष्य की जो रूपरेखा दी थी, वह रूपरेखा आज out of date हो गई है, समय के बाहर हो गई। उसी रूपरेखा को अगर लेकर हम चलते हैं तो अब जिन्दगी ढंग की नहीं हो सकती।

इसलिए पहली बात मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि अब तक के सारे आदर और सारे मूल्य जिस भांति और जिस ढांचे में विकसित किये गये थे वह भविष्य के मनुष्य के लायक नहीं रह गये। अब तक हमने जिस मनुष्य को बनाने की कोशिश की थी, वह सबसे ऊपर खड़ा हुआ था। नर्क का भय था, स्वर्ग का प्रलोभन था। और भय और प्रलोभन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मनुष्य बुरा न करे इसलिये नर्क के भय से हमने उसे पीड़ित किया था, और मनुष्य अच्छा कर सके इसलिये स्वर्ग के प्रलोभन दिये थे। लेकिन आज, अचानक इसी सदी में स्वर्ग और नर्क दोनों ही विलीन हो गये हैं। उनके साथ ही वह नैतिकता भी विलीन हुई जा रही है जो भय और प्रलोभन पर खड़ी थी। आज जो अनैतिकता का सारे जगत में विस्फोट हुआ है, इसका और कोई कारण नहीं है : पुरानी नीति के आधार गिर गये हैं।

मैंने सुना है एक चर्च के एक स्कूल में एक पादरी बच्चों को नीति की शिक्षा देने आता था। उसने बच्चों को नैतिक साहस के संबंध में एक छोटी सी कहानी कही–

Moral Courage के लिए। उसने बच्चों को समझाने के लिए कहा है कि नैतिक साहस मनुष्य के जीवन में बड़ा जरूरी चीज है। वह कहानी बड़ी पुरानी थी। उसने उन बच्चों को कहा कि मैं तुम्हें एक छोटी सी कहानी से समझाऊंगा। ३० बच्चे किसी पर्वत पर घूमने के लिए गये हैं। वे दिन भर में थक गये। रात, सोने के समय सर्द रात है। ठंड लग रही है। बिस्तर उन्हें बुला रहे हैं। २९ बच्चे तो सो गये लेकिन, एक बच्चा अपनी रात्रि की अंतिम प्रार्थना करने के लिए अंधेरे कोने में ठंड से सिकुड़ता हुआ बैठा है। तो उस पादरी ने बच्चों को कहा कि जो यह एक बच्चा है, उसमें बड़ा नैतिक साहस है २९ के विरुद्ध जाने का। जबकि ठंड है और ठंड बिस्तर में बुला रही है और दिन भर की थकान है और जब २९ बच्चे सो गये हैं तब भी एक बच्चा अपनी रात्रि की अंतिम प्रार्थना पूरी किये बिना नहीं सोता है। उसमें बड़ा नैतिक साहस है। वह पादरी सात दिन बाद आया। उसने बच्चों से पूछा कि मैंने नैतिक साहस की तुम्हें कहानी सुनाई थी। मैं तुमसे पूछना चाहता हूं कि तुम समझ सके मेरी बात? क्या तुम भी मुझे कोई घटना सुनाओगे जो नैतिक साहस को बताती हो एक बच्चा खड़ा हुआ। वह बच्चा बीसवीं सदी के पहिले कभी भी खड़ा नहीं हो सकता था। उस बच्चे ने खड़े होकर कहा कि हमने भी एक कहानी सोची है और आपकी बात से उसमें नैतिक साहस ज्यादा है। उस चर्च के पादरी ने कहा है कि मैं सुनना चाहूंगा। उस बच्चे ने कहा कि आप जैसे ३० पादरी पहाड़ पर गये हुये हैं घूमने, भ्रमण करने। वे दिन भर के थके, मांदे वापिस लौटे। रात सर्द है, ठण्डी है। बिस्तर उन्हें पुकार रहे हैं लेकिन, २९ पादरी प्रार्थना करने बैठ गये और एक पादरी सोने चला गया। और उस एक पादरी में बहुत नैतिक साहस है, २९ पादरियों के विरोध में जाने का। (हास्य) यह बीसवीं सदी के पहिले किसी बच्चे ने न सोचा होगा और यह बात सच है। जब २९ लोग प्रार्थना कर रहे हों, और उनकी आँखें यह कह रही हों कि जो प्रार्थना नहीं करेगा वह नर्क भेज दिया जायेगा। और उनके सारे व्यक्तित्व का झुकाव यह कह रहा हो, उनके Gesture, उनकी मुद्रायें यह कह रही हों कि नर्क में सड़ोगे, तब एक आदमी का प्रार्थना छोड़ कर नींद के लिए बिस्तर में चले जाना बड़े हिम्मत की बात है। लेकिन यह हिम्मत आज भी हो सकती है क्योंकि नर्क और स्वर्ग हवाई कल्पनाओं से ज्यादा नहीं रह गये। लेकिन आज से कुछ सदियों पूर्व ये बड़ी सच्चाईयां थीं और आज भी उनसे भयभीत होकर जी रहे हैं। हमने आदमियों को कहा था कि झूठ बोलोगे तो नर्क में जाना पड़ेगा। सत्य बोलोगे तो स्वर्ग का सुख है, हमने बहुत प्रलोभन दिये हैं। हमने बहुत भय दिखाए। आदमी डरा हुआ था, वह उस नर्क को मानकर जी रहा था। लेकिन आज सारे भय गिर गये हैं। और आदमी निर्भय हुआ है, इस निर्भय आदमी पर पुरानी नीति लागू नहीं हो सकती। पुरानी नीति भी पुराने आदमी के साथ मर गई है, मर रही है, मर जायेगी।

लेकिन क्या मनुष्य को अनीति में छोड़ देना है? क्या मनुष्य के अभय और निर्भय होने का अर्थ यह होगा कि यह अनैतिक हो। अगर यह होगा तो समाज निरंतर गहरे खतरों में पड़ जायेगा। क्योंकि नैतिक होने का एक ही अर्थ है कि मैं दूसरे व्यक्ति की भी चिंता करता हूं। मैं अकेला नहीं हूं। मैं पृथ्वी पर अन्य साथियों के साथ हूं। कोई भी पड़ोसियों के लिए दायित्वपूर्ण हूं। मैं उसके लिए भी प्यार करता हूं। उसे दुख न पहुंचे इस भांति जीता हूं। नैतिकता का आधार इतना है लेकिन, अब तक हमने भय, के आधार पर इस बात की संभाले रखा था। कानून का भय था। पुलिसवाला खड़ा है चौराहे पर। अदालत में मजिस्ट्रेट बैठा है। ऊपर भगवान बैठा है। वह सुप्रीम कान्सटेबिल का काम करता रहा है अब तक। ऊपर बड़े से बड़ा पुलिसवाला हवलदार था। पर ऊपर से बैठ कर नियंत्रण कर रहा है, लोगों को नर्क भेज रहा है, स्वर्ग भेज रहा है। लेकिन वह सब बिदा हो गया। बीसवीं सदी की खोज ने बताया है कि भगवान भी हमने अपने भय से निर्माण कर लिया था और उस भगवान का तो हमें कोई पता भी नहीं है जो है। और जिस भगवान को हमने अपने भय से निर्माण कर लिया था वह हमारे भय का ही आधार था। वह भगवान ही धीरे-

धीरे fade-out हो गया। वह भी विलीन हो गया। उसके साथ उसके नर्क स्वर्ग भी विलीन हो गये। उसके पुरोहित-पंडे वे भी सब विलीन हो गये। आदमी अकेलेपन Vacuum में खाली जगह खड़ा हो गया। अब हम उसे डराकर नैतिक नहीं बना सकते। तो क्या आदमी का अनैतिक होना ही भविष्य होगा? लेकिन अनैतिक होकर आदमी एक दिन भी नहीं जी सकता। अगर एक आदमी झूठ बोलकर भी जी लेता है तो सिर्फ इसलिए कि कुछ लोग उसके झूठ का विश्वास कर लेते हैं। अगर सारे लोग ही झूठ बोलने की कसम खा लें तो झूठ बोलकर जीना एक क्षण भी संभव न रह जाये। फिर झूठ पर विश्वास करने का कोई उपाय न रहे। झूठ बोलकर भी एक आदमी इसलिए जी लेता है कि कुछ लोग अभी सच बोले चले जाते हैं। बेईमानी इसलिए सफल होती है कि बेईमान हैं। नहीं। बेईमानी इसलिए सफल होती है कि अब भी कुछ लोग ईमानदार हैं·····। झूठ के अपने पैर नहीं हैं। उसे सत्य के पैर चाहिए। और बेईमानी के पास अपनी कोई आत्मा नहीं। उसे ईमानदारी की आत्मा चाहिए। अगर हम एक बार भी तय कर लें अनैतिक होने के लिए, तो अनीति भी नहीं चल सकेगी। हम तत्क्षण गिर जायेंगे। जीवन का सब ढांचा बिखर जायेगा। जिन्दा रहना मुश्किल हो जायेगा। एक क्षण जीना मुश्किल है अनैतिक होकर और आज जीवन में कठिनाईयां शुरू हो गई हैं क्योंकि, नीति के आधार गिर गये हैं। और नई नीति का जन्म नहीं हो सका। पुरानी नीति मर गई है। और नई नीति का कोई जन्म नहीं हो रहा। और प्रसव का काल लम्बा होता चला जा रहा है। वह बहुत पीड़ादायी है। वह बहुत खतरनाक है, बहुत महँगा पड़ रहा है। सारी पृथ्वी पर वैसा हुआ है। इस देश में भी वैसा हुआ है। क्या होगा। नई नीति कैसे पैदा हो सकेगी? पुरानी नीति भय पर खड़ी थी—आज्ञा पर खड़ी थी। ग्रन्थ पढ़ा जाता था इसलिए सही था। गुरु पढ़ता था इसलिए सही था, पिता पढ़ते थे इसलिए सही था, बुर्जुग पढ़ते थे इसलिए सही था। वह कोई Authority खड़ी हुई थी। हम सोचते भी न थे कि वह सही है या नहीं है? अब बीसवीं सदी में हमने सोचना शुरू कर दिया है तो सब Authority गिर गई हैं। अब Authority नहीं है। अब कोई यह नहीं कह सकता कि मनु महाराज पढ़ते थे इसलिए सच है। कैसे हम मानेंगे? जीसस तो यह भी पढ़ते थे कि जमीन चपटी है और जमीन गोल निकली। किताबें पढ़ाती थीं चांद सूरज से बड़ा है। लेकिन चांद सूरज से बहुत छोटा निकला। जमीन से भी बहुत छोटा निकला। तब हम पुरानी किताबों पर कैसे भरोसा करें? पुरानी किताबें इन मामलों में गलत सिद्ध हो गईं हैं कि नैतिक मामलों में भी सही होंगी उसकी अनिवार्यता नहीं रह गयी। इसलिए धार्मिक आदमी अपनी किताब में लिखी वैज्ञानिक गलती के लिये भी आखिरी दम तक लड़ता है। उसके लड़ने का कारण है। आज भी जैन शास्त्रों में लिखा है कि चाँद पर कोई नहीं पहुंच सकता। तो जैन साधु अभी भी लड़ाई लड़े जा रहा है। वह यह कह रहा है कोई पहुंचे नहीं। यह सब झूठी खबरें हैं। यह आर्मस्ट्रांग और यह सारी बातें सब झूठी हैं। कोई कहीं पहुंचा नहीं। पहुंच हो नहीं सकता। अभी एक जैन मुनि मुझसे मिलने आये। उन्होंने कहा कि आप भी क्या इस बात में सहमत हैं कि कोई चाँद पर पहुंच गया। चाँद पर कोई पहुंच नहीं सकता। चाँद पर देवताओं का निवास है। वहाँ मनुष्य पैर नहीं रख सकते। तो उन्होंने कहा कि यह सब गलती हो गई है कुछ। ऐसा मालूम पड़ता है कि, हमारे शास्त्रों में लिखा है कि चाँद के चारों तरफ देवताओं के विमान ठहरे रहते हैं, बड़ी दूरी पर। तो यह किसी देवता के विमान पर उतर गये हैं, और भूल से वापिस लौट आये हैं और समझ रहे हैं कि हम चाँद पर पहुंच गये हैं। यह आखिर क्यों लड़ाई जारी है। यह जैन मुनि मानने को तैयार क्यों नहीं होता? उसके पीछे बहुत गहरा कारण है। सवाल चाँद का नहीं है। चांद से जैन मुनि को क्या लेना है? हिन्दु सन्यासी को क्या प्रयोजन है? ईसाई को चाँद से क्या प्रयोजन है? मुसलमान–पंडित को क्या प्रयोजन है? किसी को कोई चाँद से कोई प्रयोजन नहीं। प्रयोजन दूसरा है। अगर चाँद पर आदमी पहुंच जाता है तो फिर महावीर के वक्तव्य का क्या होगा? और अगर

महावीर का एक वक्तव्य गलत होता है तो दूसरे वक्तव्य भी गलत हो सकते हैं। इसकी संभावना शुरू हो जाती है। अगर महावीर इतनी बड़ी भूल कर सकते हैं तो फिर दूसरी भूलें भी हो सकती हैं। इसलिये वह धर्म-गुरू पूरी चेष्टा करता है, आखिरी दम तक लड़ने के लिये। लेकिन तथ्यों को झुठलाया नहीं जा सकता। कितनी देर तक हम लड़ेंगे ? तथ्य तथ्य है और सब तरह के झूठों को फाड़ कर सिद्ध हो जाते हैं। अब संदिग्ध हो गया। अब कोई आथोरिटी नहीं रही जगत में। यह पहला मौका है दुनिया में कोई अप्रमाण नहीं रहा। बुद्धि और विवेक के अतिरिक्त अब कोई प्रमाण नहीं रहा। क्या हम ऐसी नीति खड़ी कर सकेंगे, जो बुद्धि विवेक और अभय पर खड़ी होती हो ? निश्चित ही ऐसी नीति खड़ी की जा सकती है। और भविष्य के मनुष्य की रूप-रेखा की बुनियाद ऐसी नीति होगी जो विवेक पर निर्भर हो, अंधविश्वास पर नहीं। अभय पर निर्भर हो, भय पर नहीं। दंड और प्रलोभन पर निर्भर न है। बल्कि मनुष्य के जीवन, स्वास्थ्य, सुख और समृद्धि इसकी धारणा पर निर्भर हो। यह हो सकता है।

और पुरानी नीति ने हमें नुकसान भी बहुत पहुंचाये हैं। बाधायें भी बहुत पहुंचाईं। क्योंकि बड़ी अद्‌भुत बात है, जो समाज अंधविश्वास को पकड़ लेता है और विवेक का प्रयोग नहीं करता, उसकी बुद्धि विकसित नहीं हो पाती। पुराना आदमी नैतिक था बुद्धि को खोकर। और बुद्धि को खोकर नैतिक होना, अनैतिक होने से भी बदतर है। पुराना आदमी नैतिक था, व्यक्तित्व को खोकर। और व्यक्तित्व को खोकर नैतिक होना अनैतिक होने से भी बुरा है। पुराने आदमी के पास कोई व्यक्तित्व, कोई Individuality न थी। यह भी ध्यान में रखना जरूरी है। पुराना आदमी समूह का एक अंग था। व्यक्ति नहीं। गांव में एक आदमी था वह समूह का अंग था। उसके पास कोई व्यक्तित्व न था। वह अलग से कुछ भी न था। यह भंगी था, ब्राह्मण था, चमार था, बनिया था, एक समूह का हिस्सा था, और समूह के ऊपर जिन्दा था। अगर समूह के खिलाफ इन्च भर भी चलता तो कुएं पर पानी बन्द था, हुक्का बन्द था, भोजन बंद था, विवाह बन्द था। वह जिन्दा नहीं रह सकता था। पुरानी दुनिया में कोई भी व्यक्ति ठोकर खाकर नहीं रह सकता था। उसे समाज का एक पुर्जा होकर जिंदा रहना पड़ता था। और अगर वह जरा भी विचलित होने की कोशिश करता तो अपने आप आत्मदाह पर उतर आता। उसे आत्म-हत्या के सिवा कोई रास्ता नहीं रह जाता। पुरानी दुनिया में व्यक्ति का कोई अस्तित्व न था। और इसीलिये अनुशासन था। पुरानी दुनिया का जो डिसीपिलीन था, वह डिसीपिलीन व्यक्तिओं का डिसीपिलीन न था। वह व्यक्तिओं का अभाव था, इसीलिये अनुशासन था। अनुशासन का मतलब व्यक्ति था ही नहीं। समाज का नियम और कानून चरम था। और प्रत्येक व्यक्ति को उसे मानना था। अगर जिंदा रहना था, अगर मरना था तो उसकी मर्जी। और मरने को कोई राजी न था, इसलिये सब अनुशासनबद्ध थे। अनुशासन भी खो गया। क्योंकि व्यक्ति का जन्म हुआ है। अब एक एक व्यक्ति अपनी हैसियत से कुछ, है वह किसी समाज का अंग नहीं है वह स्वयं भी कुछ है। पूरी स्थिति बदल गई है। पहले व्यक्ति समाज का अंग था। अब समाज व्यक्तिओं का जोड़ है। इन दोनों बातों में जमीन आसमान का फर्क है। अब समाज व्यक्तिओं का जोड़ है, व्यक्तिओं के ऊपर निर्भर है। पहले व्यक्ति समाज के ऊपर निर्भर था। इसलिये व्यक्ति की गर्दन घोंट दी जा सकती थी। और उससे जो भी करवाना हो करवाया जा सकता था। अब यह असंभव हो गया है। और अगर हम पुरानी आदत से मुक्त नहीं होते हैं और आज भी हम व्यक्ति की गर्दन को दबाने की कोशिश करते हैं, तो बगावत सुनिश्चित है विद्रोह निश्चित है। सब टूट जायेगा। सब तोड़ दिया जायेगा। लेकिन अब व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को खोने को राजी है। क्या हम ऐसी नीति और ऐसा अनुशासन और ऐसा डिसिपिलिन और ऐसी शिक्षा विकसित कर सकते हैं, जिसमें व्यक्ति मरता न हो, पूरी तरह होता हो, और फिर भी जीवन एक नैतिक जीवन बन सके ? मेरी दृष्टि में ऐसा विकास हो सकता है। बल्कि सच तो यह है कि व्यक्ति भी नैतिक हो सकता है। पुराने समाजों को

मैं नैतिक नहीं मानता। वह मजबूरी में नैतिक थे। क्योंकि व्यक्ति ही न था। पुराने समाज में व्यक्ति का अभाव ही न था। नये समाज में व्यक्ति का प्रादुर्भाव होगा। व्यक्ति पूरी तरह प्रगट होगा। और नैतिक कैसे वह व्यक्ति हो सके यह हमें सोचना होगा।

दो-तीन बातें मेरे ख्याल में आती हैं, जो हम सोचें तो उपयोगी हो सकें। पहली बात तो हमें यह समझना चाहिये कि नैतिकता, न तो स्वर्ग से संबंधित है, न किसी पाप से। नैतिकता न तो किसी दंड से संबंधित है। न किसी प्रलोभन से। नैतिकता ढंग से जीने की व्यवस्था का नाम है। नैतिकता जीवन को ढंग, विज्ञान और विधि देने का नाम है। अगर किसी व्यक्ति को अधिकतम जीना हो तो वह नैतिक होकर भी जी सकता है। अगर उसे कम जीना है तो वह अनैतिक हो सकता है। जितना ज्यादा जीना हो, उतना ज्यादा लोगों का साथ जरूरी है। जितना ज्यादा जीना हो उतनी ज्यादा लोगों की शुभकामनायें जरूरी हैं। जितनी परिपूर्णता से जीना हो उतने अधिक लोगों का सहयोग और Co-operation जरूरी है। आने वाली नैतिकता जीवन की एक सीमा होगी। जो Suicidal है वह अनैतिक हो सकते हैं। जो आत्मघाती है वह नीति के विपरीत जा सकते हैं। लेकिन जिन्हें जीना है, उन्हें सबके साथ जीना होगा। और सबके साथ जीने का मतलब यह होता है कि मैं सबको साथ देने वाला बन सकूं तो ही सारे लोग साथ देने वाले बन सकते हैं।

एक पुरानी व्यवस्था थी, शिक्षक था, क्लास में पढ़ा रहा था। दंडा उसके हाथ में था, और बच्चे चुप हैं। वह चुप होना बड़ा बेहुदा था, कुरूप था, क्योंकि दंड के बल पर किसी को चुप कराना अनैतिक था। वह अनुशासनबद्ध थी क्लास। एक बच्चा नहीं बोल सकता था। क्योंकि बोलना खतरनाक और मंहगा पड़ सकता था। वह अनुशासन व्यक्ति के लिये खतरनाक था। नई कक्षा में, नये विद्यार्थी के बीच दंडा लेकर शिक्षक अनुशासन पैदा नहीं कर सकता। न करना चाहिये। न यह उचित है। अब नई कक्षा में कैसे अनुशासन होगा? दंडा खो गया, शिक्षक की ताकत खो गई। नई कक्षा में विद्यार्थी है। उनके बीच अनुशासन कैसे हो? अब नई कक्षा में तो अनुशासन का एक ही अर्थ होगा कि विद्यार्थी यह समझ पायें कि वह वहां कुछ लिखने को उपस्थित हैं। और सीखना केवल सहयोग, शांति और मौन में ही सभव है। अगर इतना विवेक हम ना जगा पाये तो अब भविष्य में अनुशासन कभी भी नहीं हो सकेगा। अब अनुशासन का एक ही अर्थ होगा कि विद्यार्थी को यह पता चले कि अनुशासन मेरे हित में है। अनुशासन के मार्ग से ही मैं सीख सकूंगा, अनुभव कर सकूंगा, खोज सकूंगा। क्योंकि अनुशासन मुझे दूसरों के अंर्तसंबंध में प्रीतिकर बना देगा, अप्रीतिकर नहीं। मैं इन तीस लोगों के साथ मित्र होकर ही सीख सकूंगा अमित्र होकर नहीं। अब शिक्षक गुरु नहीं हैं। अब वह मित्र हैं। और उनके साथ सीखना हो तो मैत्री चाहिए। अब शिक्षकों को पुराना ख्याल छोड़ देना चाहिए गुरु होने का। गुरुडम की बात अब आगे नहीं चल सकती और अगर वह गुरूडम स्थापित करने की कोशिश करेगा तो बच्चे उसका गुरूडम तोड़ने की हर जगह कोशिश करेंगे। अब असली गुरूडम स्थापित करने की कोशिश गुरूडम को तोड़वाने के लिये चुनौती देने की चेष्टा है। अब उसे छोड़ देना चाहिए। अब वह मित्र होकर ही जी सकता है। और उचित भी यही है कि शिक्षक मित्र हो। वह मित्र है जो हमसे दस साल आगे हैं। जिसने जिन्दगी को दस साल देखा है, पढ़ा है, सुना है, समझा है और वह हमें भी उस जिन्दगी के रास्ते पर ले जा रहा है जहां वह गया।

मेरे एक मित्र रूस गये हुए थे। और एक छोटे से कालेज को देखने गये। वहां वे बड़े परेशान हुए। देखा कि एक लड़का सामने की ही बेंच पर दोनों जूते ऊपर रखे हुए, टिका हुआ बैठा है पैर फैलाये हुए। वे मेरे मित्र शिक्षक हैं, उनकी बरदास्त के बाहर हो गया। वे पुराने ढंग के शिक्षक हैं। उनको बहुत क्रोध आया। उन्होंने उस कालेज के प्रोफेसर को जो पढ़ा रहा था, बाहर निकल कर कहा कि यह क्या बेहूदगी है? यह

कैसी अनुशासनहीनता है ? सामने की बेंच पर लड़का जूते टिकाये बैठा हुआ है। और टिका है आराम से। यह कोई आराम की जगह है ? कोई विश्राम-स्थल है ? कोई Waiting Room है ? ढंग से बैठना चाहिए। उस प्रोफेसर ने कहा : आप समझे नहीं। मेरे विद्यार्थी मुझे इतना प्रेम करते हैं कि मेरे साथ at-ease हो सकते हैं। मैं कोई उनका दुश्मन थोड़े ही हूं कि वह मेरे सामने डरे हुए और अकड़े हुए बैठें। मैं उनका मित्र हूं, वे आराम से बैठ सकते हैं। और फिर मुझे उनके बैठने से प्रयोजन नहीं, वह किस तरह बैठ कर ज्यादा से ज्यादा सीख सकते हैं यह सवाल है। अगर उस लड़के को इतना आराम से बैठकर सुनने में सुविधा हो रही है तो बात खत्म हो गई। उसके बैठने से क्या प्रयोजन है ? (हास्य) यह एक दूसरा माहौल है मित्रता का माहौल है। जहां हम विद्यार्थियों को मित्र मान कर जी रहे हैं। और तब एक नए तरह के शिष्य और नये तरह का अनुशासन विकसित होता है। क्योंकि शिक्षक यह कह रहा है कि वह इतना प्रेम करते हैं मुझे कि अपने घर में जैसे अपनी मां के पास पैर फैलाये बैठ सकते हैं, वह मेरे पास भी बैठे हुए हैं। मैं उनका कोई दुश्मन नहीं हूं। और मेरा काम यह है कि मैं उन्हें कुछ सिखाने को यहां आऊँ। वे जितने आराम से, जितनी सुविधा से बैठ सकें, सीख सकें, यह मेरा फर्ज है, मैं उतनी उन्हें मुक्ति देता हूं। यह एक बुनियादी फर्क है। रूस में पिछले तीस वर्षों से परीक्षा करीब-करीब बिदा हो गई है। और सारी दुनिया से बिदा होनी चाहिए। क्योंकि परीक्षा पुराने तंत्र से संबंधित है, जहां हम दण्ड के बल पर सिखा रहे, और दण्ड के बल पर परीक्षा भी ले रहे थे। परीक्षा भी वहां पर बड़ा Torture है, वहाँ पर बड़ा अत्याचार है। और परीक्षा के आधार पर सीखना वहां पर एक भयग्रस्त व्यवस्था थी, fear पर खड़ी हुई थी। क्योंकि लड़का सीख रहा था, कि कहीं असफल न हो जायें। असफलता का भय उसे घेरे हुए था। सफलता का प्रलोभन घेरे हुए था। वहीं स्वर्ग और नर्क की व्यवस्था थी। अगर वह हार जाता, असफल हो जाता, तो खो जायेगा, निंदित—अपमानित होगा व्यर्थ में। अगर जीत जायेगा, प्रथम आयेगा, सफल हो जायेगा तो स्वर्ग का पृथ्वी पर अधिकारी हो जायेगा। परीक्षा भी, दण्डेवाला शिक्षक खो गया। दण्डा नहीं है उसके हाथ में। शिक्षक भीतर से अभी वही है। दण्डा भर उसके हाथ में नहीं है लेकिन शिक्षक का भीतर से मस्तिष्क अभी भी वही है। वह मित्र अभी भी नहीं हो पाया। वह पुरानी आकांक्षायें अभी भी कर रहा है। वह मान रहा है कि गुरू को आदर देना चाहिए। गुरू को सम्मान देना चाहिए। गुरू के चरण छूना चाहिए। गुरू के साथ यह व्यवहार करना चाहिए। वह पुराने गुरूडम की व्यवस्था को मानकर ही चला जा रहा है। उसे पता नहीं कि सब बदल गया है, अब विद्यार्थी मित्र ही हो सकता है। अब गुरू का सम्मान नहीं, मित्र का प्रेम मांग सकता है। और मित्र का प्रेम मांगना हो तो सब बदलना पड़ेगा। परीक्षा पुराने ढंग की अनुशासनबद्धता थी। परीक्षा के भय से सब चलता था। लेकिन परीक्षा बड़ी ही जंगली crude असभ्य व्यवस्था है। वह व्यवस्था है जबरदस्ती गरदन पकड़ कर व्यक्ति की परीक्षा करने की। वह अत्यन्त प्रेमपूर्ण नहीं, अत्यन्त क्रोधपूर्ण है और अब जबकि सब बदल गया है और परीक्षा का ढांचा पुराना है तो उस परीक्षा को, ढांचे को तोड़ने के सब उपाय चल रहे हैं। चोरी चल रही है, नकलें चल रही हैं, पेपर चोरी से किया जा रहा है, खोज को जा रही है, शिक्षकों को पैसे दिये जा रहे हैं, रिश्वत दी जा रही है (हास्य) सब किया जा रहा है। अब विद्यार्थी पढ़ने को उत्सुक नहीं है, परीक्षा देने में उत्सुक हैं। (हास्य) शिक्षक तो हमेशा से परीक्षा लेने में उत्सुक था। अब पहली बार विद्यार्थी सिर्फ परीक्षा देने में उत्सुक है। सिर्फ परीक्षा देने में उत्सुकता के मतलब खतरनाक होंगे, महँगे होंगे, और तब सब अनुशासन नीचे से टूट जायेगा। परीक्षा बिदा होनी चाहिए, शिक्षक पर जोर बढ़ना चाहिए।

मेरे एक मित्र राहुल सांस्कृत्यायन रूस में कुछ दिनों के लिए संस्कृत के प्रोफेसर थे। पहली दफा वहाँ गये तो उनको ख्याल तो हिन्दुस्तान का था। दस विद्यार्थी थे उनकी कक्षा में, जो संस्कृत पढ़ रहे थे। उन्होंने सात

को पास कर दिया और तीन को फेल । उनके प्रधान सर ब्रेटस्की ने उनको बुलाकर कहा कि तुम क्या कर रहे हो ? तुम्हारी तो तनख्वाह कट जायेगी । क्योंकि तुमने दो साल क्या किया (हास्य) यह तीन विद्यार्थी फेल होते हैं तो तुम दो साल क्या करते थे ? (हास्य) उन्होंने कहा फेल तो वे नहीं हो रहे थे । मैंने तो यह सोचकर कि मैं सभी को पास कर दूं तो लोग क्या कहेंगे ? (हास्य) मैंने तीन को फेल कर दिया, क्योंकि हम हिन्दुस्थान में सोच ही नहीं सकते कि सभी पास हो सकते हैं । (हास्य) कुछ तो फेल होने ही चाहिए । (हास्य) और अगर सभी पास हो सकते हैं तो पास होने का कोई मतलब ही नहीं रह जाता । मतलब क्या रहा ? कुछ फेल हों उनके दुख पर ही तो पास होने वाले का सुख निर्भर है (हास्य) उन्होंने कहा मैंने तो देखा कि सभी पास होते हैं तो मैंने जानकर तीन को कम अंक दिये । (हास्य) पास तो सब होते थे लेकिन कोई यह न सोचे कि मैंने कहीं अपने विद्यार्थियों को पास कर दिया । और मजा यह है कि इसमें वही शिक्षक परीक्षा भी लेता है जिस शिक्षक ने साल भर पढ़ाया । क्योंकि वह कहते हैं कि दूसरा शिक्षक परीक्षा कैसे लेगा ? जिसने साल भर, दो साल बच्चों को अनुभव कराया, उनके साथ जिया रहा, वही उन्हें पहचान सकता है, दूसरा शिक्षक कैसे जानेगा? दूसरा शिक्षक पाँच प्रश्न पूछ सकता है। यह भी हो सकता है कि पाँच प्रश्नों के उत्तर किसी व्यक्ति को पता हों, पाँच के उत्तर दे दो और पास हो जाओ और बाकी उसे कुछ भी पता न हो । और यह भी हो सकता है कि दूसरे व्यक्ति को सब पता हो सिर्फ पाँच प्रश्न से चूक गया तो मर गया । उसकी जिन्दगी खत्म हो गई (हास्य) तो वही शिक्षक परीक्षा लेगा जिसने दो साल पढ़ाया । क्योंकि दो साल उसने जाना है है कि कौन क्या है ? और शिक्षक को यह जोर है कि अगर विद्यार्थी पास न हो पाये तो जिम्मेदारी विद्यार्थी की कम और शिक्षक की ज्यादा है । क्योंकि पिछली कक्षा से वह पास होकर आया है । तो दो साल में आप क्या कर रहे थे ? तो ऐसे शिक्षक की तनख्वाह कट सकती है । Demotion हो सकता है, नीचे उतारा जा सकता है, लेकिन विद्यार्थी को असफल करने की बात ख्याल से उतर गई तो उनकी कक्षा में एक नये तरह का अनुशासन पैदा हुआ । इन्हें मैंने उदाहरण के लिए कहा । पूरे समाज को भी इस ढांचे में सोचना जरूरी है । भय अलग करें, विवेक और बुद्धि और मित्रता, प्रेम लाना होगा । पिता है, वह कल तक Authority था, अब Authority नहीं हो सकता । कल तक वह कहता था कि मैं तुम्हारा पिता हूं इसलिए जो कहता हूं वह ठीक है । बड़ा अजीब तर्क है । किसी का पिता होने से कोई बात ठीक कैसे हो सकती है । और किसी के बेटे होने से कोई बात गलत कैसे हो सकती है (हास्य) बात का सही और गलत होना पिता और पुत्र होने पर निर्भर नहीं करता । लेकिन कल तक इतना कह देना काफी था कि मैं पिता हूं, मेरी उम्र ६० साल है और जो मैं कहता हूं वह ठीक है । कल तक यह बात चलती थी । वह एक Authority थी । पिता होना एक बात थी । वह सब खो गया । वह सब बिदा हो गया । लेकिन हमारी आदत पुरानी है । वह सब बिदा हो गया लेकिन, हम वही कहे जा रहे हैं, किये जा रहे हैं, उसे कोई सुनता नहीं, मानता नहीं, दुख होता है लेकिन दुख के लिए हम जुम्मेदार हैं । असल में हमें वह सब कहना छोड़देना चाहिए पिता भी अब घर में सिर्फ पहले नम्बर का सदस्य है, Authority नही रह गई उसकी (हास्य) वह सिर्फ नम्बर एक का सदस्य है घर में । Authority नहीं रह गई उसकी । नम्बर एक होने से उसकी बातें सही नहीं होंगी अब आगे भविष्य में । पिता को थोड़ा नीचे उतरना पड़ेगा । अपने सिंहासन से थोड़ा नीचे आना होगा । और सच तो यह है कि अगर पिता सिंहासन पर हो और बेटा सिंहासन के नीचे, तो उनके बीच कोई संबंध नहीं हो सकता । और मैं आपसे कहता हूं कि पुराने बाप और पुराने बेटे के बीच कोई संबंध नहीं था । Authority से उसका कोई संबंध हो ही नहीं सकता । अगर बाप एक अधिकार के सिंहासन पर बैठा है और बेटा नीचे धूल में बैठा हो अधिकारहीन तो हमारे बीच क्या संबंध हो सकता है ? आज भी मैं अनुभव करता हूं बाप और बेटे के बीच बात नहीं होती । क्योंकि बात उनके बीच हो सकती है जो साथ खड़े हों । सिंहासन पर बैठे हों

और सिंहासन के नीचे खड़े से कोई बात हो सकती है ? तो बाप और बेटे बचकर एक दूसरे से घर में प्रवेश करते हैं। हाँ, कभी कभी मिलना होता है और कोई मिलना नहीं होता। बाकी दोनों बचकर चलते हैं। दोनों निकलते हैं करीब से, लेकिन मिलना नहीं होता। क्योंकि अधिकार और निराधिकार का मिलना कैसा ? नहीं। पुराने बाप और बेटे के बीच कोई संबंध न था। संबंध हो ही नहीं सकता। बेटे की कोई स्थिति नहीं थी बाप की सब स्थिति थी। स्थितियां बदलीं हैं अब। अब बेटे और बाप के साथ संबंध हो सकता है लेकिन बाप को सिंहासन से नीचे उतर कर आना होगा और बेटे के साथ खड़े हो जाना पड़ेगा। और मैं मानता हूं यह ज्यादा मानवीय होगा, ज्यादा Humane होगा। पुराना पिता सिर्फ नैतिक उपदेश देता था और जो भूलें उसने खुद की थीं उनकी कभी बात न करता था। वह कुछ ऐसी बात करता था कि उसने कभी भूलें ही नहीं कीं। सब बेटे भूल कर रहे हैं। बाप भी कभी बेटा था, बाप यह भूल ही जाता है। नये पिता को समझना होगा कि वह भी कभी बेटा था और उसने जो भूलें की हैं, जिन्दगी के जिन गड्ढों में वह गिरा जिन्दगी में वह जिन मुसीबतों से वह गुजरा, जिन्दगी में जो खट्टे-मीठे अनुभव हुए, वह अपने बेटे को कहे। वास्तविक जिन्दगी को भी खोल दे कि यह मेरी जिन्दगी है। और बेटे को यह भी कह दे कि मैं अपना प्रेम, मैं अपना हृदय दे सकता हूं। सब खोलकर नग्न, यह मैंने जिया, यह भूल मैंने की। ताकि हो सके तो शायद तुम मेरी भूलों से लाभ ले सको। लेकिन पुराना पिता सिर्फ आदर्श की बातें करता था। उसने कभी कोई भूल की ही न थी। बेटे थोड़ी देर में खोज करके पता लगा लेते थे। यह सब पाखंड है। आज भी पता लगा लेते हैं (हास्य) लेकिन जिस दिन यह पता चलता है कि यह सब पाखंड है, उस दिन बड़ी कठिनाई पैदा हो जाती है। अपने ही हाथों से पिता एकदम अपदस्थ हो जाते हैं। मां अपदस्थ हो जाती है। नहीं, मां और बाप को समझना होगा कि बेटे खोज लेंगे, बेटे बुद्धिमान हुए हैं, समझते हैं, पढ़े हैं। मां बाप ने ही पढ़ाया, लिखाया, उन्होंने ही पढ़ने, लिखने की सारी व्यवस्था दी है। अब पढ़े लिखे बेटे के साथ वह पुराना व्यवहार नहीं कर सकते हैं। उन्हें बदलाहट करनी पड़ेगी। पिता को बदलना होगा। उसको बदलना होगा, नेता को बदलना होगा। और समाज का पूरा ढांचा मित्रता के आधार पर खड़ा करना होगा। अथारटी के केन्द्र पर नहीं। तब एक नयी नैतिकता, एक नया विकास होना शुरू होगा। और एक नये मनुष्य को हम निर्मित कर पायेंगे। पुराना मनुष्य गया। उसका ढांचा भी गया। अब आज्ञा से नहीं चलेगा कि हम आज्ञा दे दें और वह मान ली जाये। असल में आज्ञा बहुत खतरनाक बात है। और पुराना युवक आज्ञा मानता रहा है। इसलिये दुनिया बहुत मुसीबत में पड़ी।

हिरोशिमा पर जिस आदमी ने एटम गिराया और एक लाख आदमियों का हत्यारा बना, वह जब सुबह सोकर उठा तो किसी ने उसे जाकर पूछा कि रात को ठीक से सो सके या नहीं ? उस आदमी ने कहा बिल्कुल मजे से सोया। एक लाख आदमियों को आग में भून आया वह आदमी और मजे से सोया ? तो उसने कहा आश्चर्य ! एक लाख लोग आग में भुंज गये और तुम मजे से सो सके ? उसने कहा इसमें मेरा कोई सवाल नहीं। मुझे आज्ञा दी गयी और मैंने आज्ञा पूरी की। मैंने अपना काम पूरा किया और मैं सो गया। कोई मुझे इससे संबध नहीं। उस आदमी ने उस युवक को पूछा की तुमने एटम बम्ब फेंकते वक्त यह न सोचा कि मैं एक लाख लोगों को मार रहा हूं, ऐसी आज्ञा मानूं या न मानूं ? उस आदमी ने कहा सैनिक को आज्ञा मानूं या न मानूं ऐसा सोचना नहीं पड़ता है। सैनिक को आज्ञा माननी ही पड़ती है। सैनिक का मतलब है जो आज्ञा मानता है। और जो सिर्फ आज्ञा मानता है और सोचता नहीं उसका मतलब अगर सैनिक है तो सैनिक का मतलब है जिसकी बुद्धि नष्ट कर दी गई, भ्रष्ट कर दी गई। जिसमें अब कोई विचार न रहा। असल में सैनिक की बुद्धि को नष्ट करने का हम उपाय करते हैं। पूरा मनोवैज्ञानिक उपाय करते हैं कि सैनिक के भीतर कोई विवेक न रह जाये। क्योंकि जहाँ विवेक है वहाँ आज्ञा का उल्लंघन संभव है। जहां विवेक है वहां आज्ञा मानी भी जा सकती है, तोड़ी

भी जा सकती है। लेकिन दोनों विकल्प मौजूद हैं। क्योंकि विवेक निर्णय करेगा। इसीलिये हम एक सैनिक की बुद्धि को नष्ट करने की व्यवस्था करते हैं। चार साल, पाँच साल तक एक सैनिक को कराते हैं, लेफ्ट टर्न, राइट टर्न, आगे जाओ, पीछे जाओ, बैठो, उठो उसका यह मानना पड़ता है। पांच साल बायें घूमो, दायें घूमो, दायें घूमो, बाँये घूमो, घूमते घूमते पांच साल में असली बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। (हास्य) उसकी बुद्धि का कोई विचार नहीं रह जाता। क्योंकि बायें घूमने में क्या विचार करना है? घूमना है। (हास्य) दायें घूमने में क्या विचार करना है? घूमना है। कवायत करने में क्या विचार करना? सिर्फ कवायत करनी है, पांच साल कवायत करने के बाद हम कहते हैं इस आदमी को गोली मारो, वह समझता है वही बायें और दायें घूमना, वह गोली मार देता है। उसे याद नहीं आता कि सामने जिसे वह गोली मार रहा है उसकी मां भी होगी, यह सवाल नहीं। उसे याद नहीं आता उसकी पत्नी भी होगी, यह सवाल नहीं। उसे याद नहीं आता उसका छोटा बेटा भी होगा जो उसकी घर प्रतीक्षा करता होगा, यह सवाल नहीं। सवाल सिर्फ एक है और वह है कि आज्ञा मानो। Order is order। वह आज्ञा मान लेता है। सारे दुनिया के युवक अतीत में आज्ञा मानते रहे। इसलिये चंगेज पैदा हुआ, इसलिये तैमूर पैदा हुआ, इसलिए नादिर पैदा हुआ। इसलिए दुनिया में युद्ध हुआ। हिटलर, मुसोलिनी, माओ, स्टैलिन पैदा हुए और आगे भी अगर दुनिया का युवक चुपचाप आज्ञा मानता है तो युद्धों से मुक्ति नहीं हो सकती। लेकिन मुझे लगता है कि युवक ने आज्ञा माननी छोड़ना शुरू किया है। युद्धों से बचने की संभावना आगे पैदा होती है। एक अच्छी नैतिक दुनिया में युद्ध नहीं होंगे। क्योंकि एक नैतिक दुनिया में कोई किसी को ऐसे ही मारने को तैयार न हो जायेगा।

पिछले युद्ध में कोरिया में एक बहुत अद्भुत घटना घटी। अमरीकी सैनिक जो कोरिया में लड़ रहे थे, उनके जनरल ने अमरीकी सीनेट को एक सेपरेट रिपोर्ट पेश की। और इस रिपोर्ट में यह मांग की है कि एक नई कठिनाई का सवाल खड़ा हो गया है। सौ अमरीकी जवान जब युद्ध में जाते हैं तो चालीस प्रतिशत गोली का उपयोग ही नहीं करते। वह बंदूक को लटकाये घूमघाम के दिन भर में वापिस लौट आते हैं। और उन युवकों से जब पूछा गया तो उन्होंने कहा कि हमें कोई अर्थ नहीं मालुम पड़ता कि हम क्यों किसी आदमी को मारें? किसी कोरियन की छाती में गोली मारने से हमें कोई संबंध नहीं। न हमारा कोई झगड़ा है, न कोई दुश्मनी। हम भी नौकरी पर चले आये हैं। वे भी नौकरी पर चले आये हैं। उनको भी सिखाया गया कि आज्ञा मानो। हमको भी सिखाया गया कि आज्ञा मानो। लेकिन ऐसी आज्ञा मानने की इच्छा नहीं होती। उससे अच्छा है कि हम मर जायें बजाय हम किसी को मारें। उनके जनरल ने अमरीकी सीनेट को लिखा है कि यह Trend अगर यह वृति बढ़ती गई तो अमरीका का सैनिक कहीं भी नहीं जीत सकेगा। क्योंकि अगर अमरीकी जवान यह कहता है कि हम सोच कर गोली मारेंगे कि मारने योग्य आदमी है या नहीं? तो फिर गोली कभी नहीं मारी जा सकती क्योंकि, कोई भी आदमी मारे जाने योग्य नहीं है। ज्यादा से ज्यादा कुछ लोग सुधारे जाने योग्य हो सकते हैं। लेकिन मारे जाने योग्य कोई भी नहीं। अमरीकी जनरल तो घबड़ाया। लेकिन मैं मानता हूं कि दुनिया के सब जनरलों को धीरे-धीरे घबड़ा जाना पड़ेगा। हिन्दुस्तान में भी, पाकिस्तान में भी, चीन में भी। युवक को समझना होगा कि हम आज्ञा मानें या न मानें। पुरानी दुनिया यह कहती थी मानो ही। आज्ञा अंतिम सत्य है उनको कभी सोचना मत। नई नैतिकता आज्ञा पर इतना जोर नहीं दे सकती। नई नैतिकता कहेगी सोचना, विवेक से विचारना, और ठीक लगे तो करना, और अगर गलत लगे तो न करने में मर जाना, बजाय गलत करने में जिंदा रहने से। एक नैतिकता और तरह से विकसित होगी। पुरानी नैतिकता लोकल थी, स्थानीय। नई नैतिकता जागृति होगी, यूनिवर्सल होगी। पुरानी नैतिकता एक छोटे-छोटे घेरे में बन्द किये जाती थी। नई नैतिकता का कोई घेरा नहीं होगा।

पूरी मनुष्यता का उसमें विस्तार होगा। पुरानी नैतिकता कहती थी तुम्हारी यह चमड़ी है काली, तुम्हारी गोरी, तुम अलग, तुम अलग। पुरानी नैतिकता कहती थी कि तुम हिन्दू हो, तुम मुसलमान हो तुम अलग, तुम अलग। नई नैतिकता कहेगी मनुष्य सिर्फ मनुष्य है और कोई मनुष्य किसी से अलग नहीं, सब मनुष्य एक हैं। असल में मनुष्यों में जातियां नहीं हो सकतीं। जो लोग बायलॉजी पढ़ते हैं वे जानते होंगे जाति का क्या मतलब होता है? जाति का सिर्फ एक मतलब होता है। जाति का पता लगाने का उपाय क्या है? हम बन्दर को और शेर को दो जातियां कहते हैं, क्यों? हम कुत्ते और बिल्ली को दो जातियां कहते हैं, क्यों? कारण है। कुत्ते और बिल्ली मिल के बच्चे पैदा नहीं कर सकते, शेर और बन्दर मिल के बच्चे पैदा नहीं कर सकते। जाति का वैज्ञानिक सिर्फ एक अर्थ होता है। जो लोग मिल के बच्चे पैदा करते हैं वह एक जाति के हैं। जाति का और कोई अर्थ नहीं होता। अंग्रेज और हिन्दू मिल कर बच्चे पैदा कर सकते हैं। मुसलमान और ईसाई मिल कर बच्चे पैदा कर सकते हैं। काले और गोरे, ब्राह्मण और भंगी, मिलकर बच्चे पैदा कर सकते हैं। मनुष्यों की जाति एक है दो नहीं। जो मिल कर बच्चे पैदा करते हैं उसकी जाति एक है। जाति का दो का कोई अर्थ ही नहीं होता। दो का एक ही अर्थ होता है कि उनके अंग इतने भिन्न हैं कि वे मिल के बच्चे पैदा नहीं कर सकते। आदमी एक है उसकी जाति एक है। पुरानी नैतिकता आदमी को तोड़ कर चलती थी। नई नैतिकता आदमी को तोड़ कर नहीं, जोड़ कर चलेगी। और बड़े आश्चर्य की बात है। पुरानी नैतिकता के कारण आदमी कमजोर हुआ, बीमार हुआ, क्षीण हुआ, भिन्न हुआ, सब तरह से उसका नुकसान हुआ। अगर हम जगत को एक मानकर जियें, जीना ही पड़ेगा, क्योंकि जगत एक होता चला जा रहा है, मनुष्य ज्यादा समृद्ध होगा। आज हिन्दुस्तान का गरीब होने का कोई कारण नहीं, सिवाय इसके, कि अमरीका अलग और हिन्दुस्तान अलग है। आज हिन्दुस्तान का दूसरा और बीमार होने का कोई कारण नहीं, कारण सिर्फ एक है कि रूस अलग हिन्दुस्तान अलग। आज दुनिया के पास इतने साधन हैं कि जमीन पर एक भी आदमी गरीब न हो। आज इतने साधन हैं कि एक भी आदमी को बीमारी में पड़ने की अनिवार्यता ना रहे। आज इतने साधन हैं कि सभी लोग कम से कम सौ वर्ष की उम्र पा सकें। आज इतने साधन हैं कि सभी लोग ठीक मकानों में रह सकें, भोजन पा सकें, कपड़े पहन सकें। लेकिन पुरानी दुनिया के खंड कायम हैं। तो उसका परिणाम यह होता है कि एक मुल्क अतिगरीब है और एक मुल्क अतिसमृद्ध। और अतिगरीबी भी मुसीबत है, अतिसमृद्धि भी मुसीबत है, अमरीका समृद्धि से पीड़ित और परेशान है, हमें गरीबी से पीड़ित और परेशान हैं। और अगर यह सीमायें बीच की गिर जायें तो सब बंट जाये और जिंदगी बराबर तल पर आ जाये। सारी मनुष्यता बराबर तल पर आ जाये। लेकिन यह नहीं हो पा रहा। क्योंकि पुराने लोकल माइन्ड, स्थानीय माइन्ड, अब भी हमको घेरे हुये हैं। भारत माता की जय, पाकिस्तानी माता की जय, जर्मन माता की जय, अब भी जारी है। नये मनुष्य को इन सब माताओं को बिदा करना होगा। एक ही माता काफी है पृथ्वी माता, अलग-अलग माता बांटने को कोई जरूरत नहीं और पृथ्वी बंटी हुई नहीं है, पृथ्वी अखंड है।

एक अन्तिम बात और कहना चाहूंगा। पुरानी नीति दुख को केन्द्र मान कर चलती थी। उसने स्वीकार कर लिया था कि दुख जीवन का केन्द्र है। उसके कारण थे। पुराने आदमी ने सुख बहुत कम जाना। पुराना आदमी दुख में ही जिया। असल में सुख को पैदा करने की व्यवस्था पहली दफा विज्ञान और टेकनोलॉजी से हम उपलब्ध हुई। अब तक सुख को पैदा करने की व्यवस्था ही न थी। आज के पहले दस बच्चे पैदा होते थे तो आठ बच्चे मर जाते थे। दो बच्चे जीते थे। और जिस समाज में दस बच्चे मरते हों उस समाज में दो बच्चे भी मरे-मरे ही जी सकते थे। क्योंकि उनको भी इतना अद्भुत स्वास्थ्य नहीं मिल सकता था। आज से पुरानी दुनिया में आदमी किसी भांति जी रहा था दुख में, बीमारी में, पीड़ा में, परेशानी में, दुख जीवन का केन्द्र

था। इसलिये बुद्ध कह सके कि जीवन दुख है। इसलिये पुराने विचारक कह सके कि जीवन दुख है। दुख को केन्द्र मान कर चले थे हम। और हमने दुख को स्वीकार कर लिया था। दरिद्रता को स्वीकार कर लिया था। इसलिये पुरानी नैतिकता दुख को वरण करने को आदर देती थी। जो आदमी अपनी तरफ से दुख को वरण कर सकता है वह बहुत नैतिक आदमी है। वह बहुत सज्जन आदमी है, संत है, साधु है, महात्मा है। पुरानी नैतिकता दुख को वरण करने वाले को तपस्वी, त्यागी और महान कहती थी। क्योंकि दुख था। और दुख से बचने का कोई उपाय न था। तब फिर दुख को स्वीकार करके ही Consolation और सांत्वना उपलब्ध की जा सकती थी। अब सब बदल गया है। अब दुख को स्वीकार करने की कोई जरूरत भी नहीं है। अगर दुख है तो हम जिम्मेवार हैं। अगर दुख है तो हम नहीं बदल रहे इसलिये है। अब दुनिया में हीनता, पीड़ा, परेशानी को स्वीकार करने की कोई जरूरत नहीं। अब हमें सुख को केन्द्र पर रखना पड़ेगा। और जो आदमी सुखी होने का और सबको सुखी करने की कोशिश में संलग्न है उसे साधु, सज्जन और अच्छा आदमी कहना पड़ेगा। जो आदमी लोगों के दुख बढ़ाने की कोशिश कर रहा है, तप के, त्याग के नाम पर उस आदमी को नैतिकता के दायरे के बाहर करना पड़ेगा। वह आदमी अनैतिक है अब नैतिक वह आदमी है जो जिंदगी में ज्यादा सुख के खिलाने की कोशिश में संलग्न है। अब वह आदमी नैतिक है तो जिंदगी से बीमारियाँ दूर करने में लगा है। पुरानी नैतिकता बड़ी अजीब थी। एक आदमी चोरी न करें नैतिक हो जाता। एक आदमी किसी की स्त्री को न भगाये नैतिक हो जाता। नैतिकता नेगेटिव थी। आपने कभी ख्याल किया है, पुरानी नैतिकता कहती थी Do not do। ये मत करो। बस न करो, न करो, न करो, पुरानी सारी नैतिकता नेगेटिव थी। वह कहती थी चोरी मत करो वह कहती थी झूठ मत बोलो। वह कहती थी यह मत करो, यह मत करो, यह मत करो। अगर बाइबिल के Ten-Commandments हम देखें तो वह सब यही है कि यह मत करो, यह मत करो, यह मत करो। मत करो अर्थहीन है। आप झूठ न भी बोले तो इतना ही है कि आपके झूठ से जो नुकसान पहुंचता वह नहीं पहुंच रहा, लेकिन उससे जिन्दगी बहुत सुख को उपलब्ध न हो जायेगी। अगर जिंदगी को सुखी बनाना है तो Morality को पाजिटिव होना पड़ेगा कि यह करो। पुरानी नैतिकता कहेगी किसी को मत मारो। तो बचकर निकल जाओ और अगर चींटी मर रही हो तो तुम्हें क्या प्रयोजन? तुम बचकर बाहर निकलो। तुम्हें मारना नहीं है। पुरानी नैतिकता कहेगी, अहिंसा, अहिंसा! नेगेटिव शब्द है। हिंसा मत करो। वह कहेगी किसी की छाती में छुरा मत मारो। लेकिन वह यह नहीं कहेगी कि किसी की छाती में छुरा लगा हो तो निकालो। पुरानी नैतिकता नेगेटिव है। वह कहती है चींटी मरती है तो तुम्हें कोई भी मतलब नहीं। तुम अपने रास्ते जाओ तुम मत मारो। लेकिन तुम्हारे न मारने से भी चीटी मर सकती है। तो उसे बचाने का कोई उपाय पुरानी नीति में नहीं है। पुरानी नीति का निषेधात्मक रूप दुःख के कारण था। नयी नीति का पाजेटिव रूप अगर हम सुख को केन्द्र पर रखते हैं, तभी मनुष्य जाति को सुखी होने का अधिकार है। स्वर्ग कहीं और नहीं। स्वर्ग हमें कहीं और रखना पड़ा था, सिर्फ इसलिये की पृथ्वी पर बनाने में, हम असमर्थ हो गये। पृथ्वी दुख थी। तो सुख हमें स्वर्ग में रखना पड़ा था। अब सुख को स्वर्ग में रखने की कोई जरूरत नहीं। हम उसे पृथ्वी पर भी बसा सकते हैं। इसलिये एक नई पाजीटिव मोरालिटी जो कहे यह करो, सुख के साधन बनाओ। आप जैसे समझें। हम एक आदमी को महात्मा कहेंगे क्योंकि उसने लंगोटी लगा ली। अब लंगोटी कोई लगा ले उसकी मौज है, उसमें महात्मा होने की क्या बात है? (हास्य) आपको लंगोटी लगाने का शौक है, मजे से लगाइये। आपको सरदी में खड़े होने का शौक है, खड़े हो जाइये। आपको धूप में खड़े होने का शौक है, धूप में खड़े हो जाइये। लेकिन इसमें नैतिक होने का क्या अर्थ? लेकिन यह आदमी महात्मा है, लेकिन एक आदमी है दूसरा, जो रात में मरघट से मुर्दा चुराकर और चीर-फाड़ कर पता लगा रहा है कि आदमी का पेट कैसे काम करता है?

यह आदमी महात्मा नहीं था पहले। यह चोर था। उसने मुर्दा चुरा लिया। यह पकड़ा जाय तो उसकी सजा हो जाये। लेकिन इस आदमी ने दुनिया के सुख बढ़ाने में बड़ा काम किया। आज अगर हमारे पेट स्वस्थ हैं तो इन आदमियों की वजह से उन्होंने मरघट से मुर्दा चुराये और जिन्होंने मरघट से मुर्दा चुरा कर रात के अंधेरे में छुप कर उनको चीरा-फाड़ा और पता लगाया की आदमी का पेट कैसे काम करता है? अल्सर कैसे बन जाता है? और अपेन्डीसाईटिस कहाँ है? और क्या है? और क्यों है? जिन लोगों ने रात के अंधेरे में आदमी के सुख की तलाश की, आदमी के ही विरोध के बावजूद, क्योंकि आदमी चारों तरफ कह रहा था कि यह बात गलत है। यह नहीं होनी चाहिए। आप मुर्दा कैसे चुरा सकते हैं। इन लोगों को हमने अब तक महात्मा नहीं कहा। लुई पेस्योर को हम महात्मा नहीं कहेंगे। हम एक आदमी को महात्मा कह देंगे जो ठंड में बैठा हुआ है। अब बड़े मजे की बात है ठंड में कोई बैठे, मजे से बैठे। कोई तकलीफ देने की जरूरत नहीं। उसको टोकने की जरूरत नहीं। क्योंकि किसी को कोई नुकसान नहीं पहुंच रहा। लेकिन ठंड में बैठना महात्मा होने का क्या मतलब है? नैतिक होने का क्या अर्थ है? Positive Morality होगी भविष्य की! जो आदमी मनुष्य के सुख को बनाने के लिए कुछ कर रहा है, वह आदमी नैतिक होगा। अगर हम एक विधायक नीति की धारणायें दे सके, हम कैसे मनुष्य के सुख को बढ़ायें और मनुष्य का सुख हजार रास्तों से बढ़ाया जा सकता है और ध्यान रहे कोई आदमी अकेला सुखी नहीं हो सकता। हम सब मिलकर अगर चेष्टा करें तो सुख का फूल खिल सकता है। हजार रास्ते हैं। आप रास्ते पर निकलते हैं और अगर आप उदास चेहरा लिए निकलते हैं तो मैं आपको अनैतिक कहूंगा। अगर आप रास्ते से गुजरते हैं और जो भी आदमी मिलता है उससे आप कहते हैं बड़ा दुखी हूं, बड़ी परेशानी में हूं, तो आप अनैतिक आदमी हैं। मैं आपको नैतिक आदमी नहीं कहूंगा। जो आदमी अपने दुख को रो रहा है सुबह से शाम तक वह बिल्कुल अनैतिक आदमी है। क्योंकि वह दूसरों को भी दुखी करने का उपाय कर रहा है। लेकिन जो आदमी मुस्करा रहा है और जो दूसरों को मुस्कराहट के रास्ते बना रहा है वह आदमी नैतिक है। क्योंकि वह आदमी को खुशी की तरफ ले जाने का मार्ग खोल रहा है। लेकिन हमारे साधु संत सब उदास और गंभीर थे। असल में संत होने के लिए रोती हुई शक्ल लेकर पैदा होना बहुत जरूरी है। (हास्य) नहीं तो कोई आदमी सन्त नहीं हो सकता बिल्कुल रोती शक्ल होगी आँसू अब टपके—तभी कोई सन्त हो सकता है। सन्त होने के लिये अगर हँसती हुई शक्ल है तो कठिनाई की बात है। आप संत नहीं हो सकते संत होने के लिए गंदा होना जरूरी हैं। इसलिए संत नहाते नहीं हैं। जैनियों के मुनि नहाते नहीं, स्नान नहीं करते बल्कि जैन शास्त्रों में लिखा है हाथ में मैल जम जाये तो उसे पोंछना भी पाप है उसको जमने देना चाहिए सब तरह की गन्दगी आदि को, सब तरह की उदासी, बीमारी ओढ़ ले।

हिन्दुस्तान से एक आदमी जर्मनी लौटा, काउन्ट केंसरलांग, तो उसने अपनी डायरी में लिखा कि हिन्दुस्तान में जाकर मुझे पहली दफे पता चला कि स्वास्थ्य एक अनैतिक है, बीमार होना नैतिकता है। और हिन्दुस्तान में जाकर मुझे पता चला कि अस्वच्छ रहना, गंदगी से रहना आध्यात्म है। स्वच्छ रहना और ताजे रहना, और साफ सुथरे रहना भौतिकवाद है Materialism है। नहीं यह सब हमें बदल देना पड़ेगा। एक नई नीति स्वस्थ, सुखी आदमी को मुस्कराते आदमी को स्वीकार करें। हमें अब कुछ और महावीर की नई मूर्तियां ढालना होंगी जिनमें वह खिलखिलाते हँस रहे हों। अब उदास महावीर और उदास बुद्ध नहीं चल सकते, ईसाई तो कहते हैं कि जीसस कभी नहीं हंसे क्योंकि हंसने जैसी छोटी मोटी चीज जीसस कभी कर सकते हैं? (हास्य) उनकी किताबें कहती हैं, Jesus never laughed जीसस हंसे ही नहीं कभी जिंदगी में उन्होंने जैसा जीसस को बनाया, देखा उन्हें सूली में लटके हुए अगर वह न भी लटकते तो ईसाई उनको लटका देते क्योंकि गंभीर आदमी को सूली पर लटका होना चाहिए (हास्य)

लेकिन अब हम जीसस को हंसाकर रहेंगे । हमें जीसस की नई तस्वीरें बनानी पड़ेंगी । जिनमें वह हंस रहे हों, फूलों के बगीचे में खड़े । नये आदमी को सुखी और स्वस्थ्य और आनंदित इस पृथ्वी पर, स्वर्ग में नहीं, इस पृथ्वी पर, सुख और स्वास्थ्य को स्वीकार करना पड़ेगा । तो हम एक विधायक नीति के आधार रख सकते हैं और मुझे कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता है कि आधार क्यों नहीं बदले जा सकते । मैं आपसे इतनी ही प्रार्थना करूंगा इन दिशाओं में सोचें । बड़ा सवाल है जिंदगी के सामने बड़ी समस्या है । हम नई नीति को कैसे जन्म दें । इन दिशाओं में सोचें । शायद हम सब सोचें तो कुछ रास्ते सोच लें । मैं कोई उपदेश देने वाला नहीं हूं कि मैं आपको उपदेश दूं और आप ग्रहण कर लें । वह मामला छोड़ें । वह गुरू शिष्य का संबंध गया । अब कोई उपदेश देगा कोई ग्रहण करेगा यह सवाल नहीं है । हम सब इकट्ठे होकर सोच सकें, हम सब मित्र की तरह सोच सकें और नये मनुष्य की रूपरेखा निर्मित कर सकें । इस दिशा में मैंने कुछ बातें कहीं, मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत आनंदित हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं । मेरा प्रणाम स्वीकार करें ।

●●●

आचार्य रजनीश और उनका सन्देश

श्रीमती उर्मिला सिंह, जबलपुर

जिस प्रकार आकाश में पूर्णिमा के चन्द्र को देखकर आनन्द की लहरें उठने लगती हैं उसी प्रकार पूर्णता को प्राप्त आचार्य रजनीश जैसे महात्मा के सम्पर्क में आकर आध्यात्मिक प्रवृत्ति के मनुष्यों की आत्मा अनायास ही प्रफुल्लित हो उठती है और दर्शन मात्र से ही वे उनकी ओर आकर्षित हो जाते हैं । बुद्धिजीवी व्यक्ति के लिए केवल उनके दर्शन ही यथेष्ट नहीं हैं । वे उनसे तब प्रभावित होते हैं जब वे उनकी पावन वाणी और मौलिक विचारों को सुनते हैं । साधारण बुद्धि और विनम्र स्वभाव वाले लोग तो उनके अद्‌भुत व्यक्तित्व से नितान्त अभिरंजित हो जाते हैं । किन्तु आध्यात्मिक एवं बुद्धिजीवी न होते हुए भी जो लोग अहंकार से परिपूरित हैं वे उनके प्रभाव से अछूते रह जाते हैं ।

दूसरों के कल्याण के लिए सतत प्रज्जवलित होने वाली आचार्य जी की जीवन ज्योति सबके आन्तरिक अन्धकार को दूर कर उनको दिव्य आनन्द से भर देना चाहती है किन्तु सच तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति का हृदय उस प्रकाश से उतना ही आलोकित होता है जितनी कि उसकी अपनी क्षमता होती है । आचार्य जी की करुणा की कोई सीमा नहीं । वह मानव मात्र तो क्या, समस्त विश्व के प्रति प्रवाहित हो रही है । परन्तु वे दूसरे कथाकथित धार्मिक गुरूओं की भाँति यह कभी नहीं कहते कि जो मेरी शरण में आएगा उसका उद्धार हो जाएगा । वे तो बार-बार यही समझाते हैं कि कोई भी शास्त्र, कोई भी अवतार, कोई भी गुरू आपको कहीं नहीं पहुंचा सकता, यदि आपके भीतर प्रभु-प्राप्ति की इच्छा है तो इसके लिए आपको स्वयं ही विधायक रूप से कुछ करना पड़ेगा । क्या करना चाहिए ? कैसे करना चाहिए ? इसका स्पष्ट विवेचन वे अवश्य कर देते हैं । क्योंकि निर्विकल्प समाधि को प्राप्त यह महायोगी नाना प्रयोगों के बाद जिस पद्धति द्वारा उस परम सत्य तक पहुंचा, उसको गुप्त रखकर वह स्वयं ही महान नहीं बनना चाहता वरन् उसके रहस्य का उद्‌घाटन कर सभी को महान बनाना चाहता है । इसलिये उसके सामने पात्रता या अपात्रता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । वह तो आध्यात्मिक मार्ग पर चलने के लिए सबको समानरूप से अधिकारी मानता है ।

आचार्य रजनीश का कहना है कि अविकसित मनुष्य के लिए अफलातून की यह परिभाषा बिल्कुल

उपयुक्त है कि "मनुष्य एक पंखहीन दो पैरों वाला पशु है।" परन्तु मनुष्य चाहे तो पशुता की सीमा को पार कर सकता है क्योंकि उसके भीतर विकास की अनन्त संभावना वर्तमान है। आत्मिक विकास द्वारा व्यक्ति उस ऊँचाई तक पहुंच सकता है जहाँ समष्टि का अंग बन कर वह "अहं ब्रह्मास्मि" की घोषणा करता है। इस विकास की इच्छा कई लोगों को होती है किंतु व्रत--उपवास, जप-तप, पूजापाठ जैसी बाह्यक्रियाओं में उलझ जाने के कारण वे कहीं भी पहुंच नहीं पाते। बिना आत्मिक-विकास के प्रभु प्राप्ति असंभव है। पूर्णता को प्राप्त परम-आत्मा ही सत-चित-आनंदमयी बन कर उस विराट के साथ संयुक्त हो जाती है। इसीलिए आचार्य जी का यह मत है कि हर व्यक्ति परमात्मा बन सकता है।

आचार्य रजनीश ध्यान को ही प्रभु प्राप्ति का एक मात्र साधन मानते हैं। उनकी दृष्टि में शेष सब मार्ग केवल भटकाव हैं क्योंकि वे मनुष्य की चेतना को बाहर तक ही सीमित रखते हैं, उसे अन्तर्मुखी नहीं होने देते। अपने भीतर जो अज्ञेय तत्व है उसकी अनुभूति हमें इसलिए नहीं होती क्योंकि मस्तिष्क में विचारों का शोर निरन्तर होता रहता है। ध्यान द्वारा इन्हें शान्त किया जा सकता है। वास्तव में ध्यान लगाते समय ही प्रथम बार विचार प्रवाह की प्रबलता और अपनी विवशता का पता लगता है। किन्तु विचार-प्रवाह के प्रति जागरूक होने से ही धीरे-धीरे विचार कम होने लगते हैं और मन शान्त स्थिति की ओर बढ़ने लगता है। उस शान्ति से ही व्यक्ति को पहली बार आनन्द की प्राप्ति होती है। आनन्द की उस अस्थायी अनुभूति से ही अधिक से अधिक आनन्द प्राप्ति करने की इच्छा जागृत होती है और यह समझ में आता है कि आनन्द वस्तुतः आन्तरिक शान्ति का ही परिणाम है और इसमें सबसे बड़ी बाधा अशान्ति है। तब शान्ति को भंग करने वाले कारणों की ओर ध्यान जाता है। प्रायः हम लोग यह मानते हैं कि वाह्य परिस्थितियों के कारण हमारी शांति भंग होती है जबकि तथ्य यह है कि हमारे भीतर जो अशान्ति सदा उपस्थित है वह वाह्य कारणों से उभड़ पड़ती है। काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या आदि वासनायें हमारे भीतर सतत वर्तमान हैं। यदि साधना द्वारा इनको संपरिवर्तित (Transform) न किया जाये, इनका उदात्तीकरण न किया जाये तो ये सदा हमें दुखी बनायेंगी। किन्तु यदि इन्हें मंगल की दिशा में प्रवाहित किया जाये तो क्रोध क्षमा में और काम ब्रह्मचर्य में परिवर्तित हो जायेगा। जीवन में जो भी व्यर्थ है उसे सार्थक बनाने की कला को ही आचार्य जी साधना मानते हैं। उनका कहना है कि जीवन की परिस्थितियों को नहीं बदला जा सकता, संसार को नहीं बदला जा सकता, यहाँ तक कि अपने प्रिय से प्रिय व्यक्ति को भी नहीं बदला जा सकता किन्तु स्वयं को अवश्य बदला जा सकता है। अंतस परिवर्तन ही सच्ची साधना है। ज्यों-ज्यों अन्तस विशुद्ध और पावन होता है त्यों-त्यों शान्ति और आनन्द की अनुभूति बढ़ती जाती है और इसके परिणामस्वरूप संसार के प्रति हमारा दृष्टिकोण बदलने लगता है, कुरूपता की जगह सौन्दर्य दिखाई देने लगता है और बुराई की जगह अच्छाई दिखाई देने लगती है। हृदय में प्रेम का स्रोत फूटने लगता है। वास्तव में चित्त-शान्ति की ही एक अवस्था है प्रेम। जब तक चित्त शान्त नहीं होता तब तक हर व्यक्ति की एक ही शिकायत होती है कि उसे दूसरों से प्रेम नहीं मिलता। किन्तु प्रतिदान मांगने वाला और प्रेमी को अपने अधिकार में रखनेवाला प्रेम झूठा है क्योंकि उसमें हिंसा भरी हुई है। वह तो अपने ही अंधकार का प्रदर्शन है। जब हम किसी से प्रेम करते हैं तो वस्तुस्थिति यह होती है कि हम उससे प्रेम की मांग करते हैं। इस संसार में सब लोग एक दूसरे से प्रेम मांग रहे हैं और किसी की यह उपेक्षा पूरी नहीं होती क्योंकि प्रेम देने को कोई तैयार नहीं। सच बात तो यह है कि "प्रेम वही दे सकता है जिसकी प्रेम की मांग के ऊपर उठना हो गया है.....प्रेम एक मांग नहीं प्रेम एक भेंट है.....जीवन के कुछ अनिवार्य नियमों में से एक नियम यह है कि प्रेम जो माँगता है उसे प्रेम कभी नहीं मिलता है, जो प्रेम बाँटता है उसे प्रेम मिलता है लेकिन उसे प्रेम की कोई मांग नहीं

होती । साधारण व्यक्ति तो ऐसे प्रेम की कल्पना भी नहीं कर सकता । परन्तु आचार्य जी के प्रेम को देख-कर यह बात समझ में आ जाती है कि प्रतिदान न माँगने वाला प्रेम कितना पवित्र और कितना असीम होता है । अच्छे, बुरे, मूर्ख, बुद्धिमान आदि न जाने कितने प्रकार के लोग उनके सम्पर्क में आते हैं किंतु वे सब पर एक समान ही अपने प्रेम की वर्षा करते हैं । हर व्यक्ति को ऐसा लगता है कि आचार्य जी सबसे अधिक मुझसे ही प्रेम करते हैं किन्तु उनका प्रेम किसी एक व्यक्ति तक सीमित नही रहता । आचार्य जी के प्रेम के प्रवाह को कोई बाँध नहीं सकता, उसकी धारा तो विश्व के कण-कण की ओर अबाध गति से प्रवाहित होती रहती है । उसमें निमग्न होकर न जाने कितने लोग धन्य-धन्य हो उठे हैं । यदि कोई यह समझे कि प्रेम से, सेवा या धन से वह आचार्य जी पर एकाधिका प्राप्त कर सकता है तो वह बहुत बड़े भ्रम में है । वह मुक्त आत्मा किसी के वश में नहीं हो सकती । क्या आध्या-त्मिक और क्या भौतिक, प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक वर्ग के सच्ची लगन वाले लोगों को आचार्य जी से प्रेरणा मिलती है । वे कोई ऐसी बात नहीं कहते जो स्वअनुभूत न हो । उनके अन्तर और बाह्य आचरण में कोई भेद नहीं, कोई द्वैत नहीं । वे जैसे भीतर हैं, वैसे ही बाहर हैं इसलिए उनके जीवन में कहीं कोई ढोंग नहीं । उनके व्यक्तित्व की इस सच्चाई के कारण ही उनके द्वारा उच्चरित एक-एक शब्द का दूसरों पर बहुत प्रभाव पड़ता है और असंख्य मुमुक्षु उनके द्वारा बताए गए मार्ग पर चल कर परम आनन्द को प्राप्त करते हैं ।

***

प्रिय शिव,
नमस्कार ।

आपने जितनी लग्न और परिश्रम से इस विशेषांक को तैयार किया है कि वह पढ़ते ही बनता है । विशेषतया प्रेमीजनों को जो सुअवसर आपने प्रदान किया है, उसके लिए मैं आपका जितने भी शब्दों में आभार प्रदर्शित करूँ उतना ही कम है ।

युकांद पढ़ते-पढ़ते आँसू थे कि थमने का नाम ही न लेते थे । मन पुकार-पुकार कर कहता था कि इस कलिकाल में आचार्य श्री स्वयं सोलह कला सम्पूर्ण भगवान श्रीकृष्ण ही हैं । **वो इतने महान हैं फिर भी उतने ही मौन हैं । वो ज्ञान का भण्डार हैं किन्तु उतने ही सरल भी हैं ।** उनकी जितनी भी महिमा गाई जाए, कम है ।

इस अंक में आचार्य श्री के इतने पहलू प्रकाश में आये हैं कि मन से यही दुआ निकलती है कि उन्हें मेरी उम्र लग जाए, वो जब तक संसार कायम है, तब तक कायम रहें ।

अन्त में आपको एक बार फिर धन्यवाद और नमस्कार ।

आपका
रामगोपाल, अमृतसर

'जन्म दिवस विशेषांक' पर दो प्रतिक्रियाएं

प्रिय भाई शिव,

प्रणाम ! जन्म दिवस विशेषांक मिला । कल रात ही पढ़ा । इतने सुन्दर अंक निकालने के लिए हार्दिक बधाई ।

आप आजोल आये थे । अवश्य ही मैंने आपको वहाँ देखा होगा । आप वे तो नहीं जिन्होंने मुझे युक्तांद का ग्राहक बनाया था ?

आपने पिछले अंक में लिखा था कि आजोल में जो कुछ देखा व अनुभव किया था बाद के अंक में लिखेंगे पर अब तक कुछ नहीं लिखा, क्यों ? चाहता तो मैं भी बहुत था पर क्या करूँ मेरे बस की बात नहीं, उसे शब्द देना जो शब्दातीत है । फिर मैं तो लेखक भी नहीं, हां आप अवश्य ही लिखें, इतनी प्रार्थना है ।

२९ नवम्बर से ७ दिसम्बर तक आचार्य श्री यहाँ थे– अब तक अचरज है कि इतना बड़ा सौभाग्य कैसे पा गये हम लोग ? क्या आप आये थे ? आपसे मिलना चाहता था पर सब कुछ विस्मृत हो गया— किसी से पूछा भी नहीं आपके लिए क्या पता आप आये हों और मैं आपके साथ बैठ थोड़ी देर हंसने व रोने के आनन्द से वंचित रह गया होऊँ । पर आचार्य जी के चरणों में बैठ दो चार दहाड़े मार रो आया, आनन्द सागर में डूब आया, अमृत पी आया । पर क्या करूँ यह ऐसी अमिट प्यास है जो बुझती ही नहीं और...और...और इतना कि बस दम ही निकल जाये –सब कुछ मिट जाय, कुछ भी शेष नहीं बचे । कितने अभागे हैं कि फिर भी हम बच जाते हैं । हां तो बताइये क्या आप आये थे ? भविष्य के लिए इतना याद रहे कि कभी भी ऐसी गल्ती हो जाये कि यहाँ आ निकलो या इधर से गुजरो भी तो लिख देना—एक बार मिल तो लूं मेरे 'राइवल' (प्रतिस्पर्धी) से—जिसने मेरी जगह लेनी चाही, जिसने मेरी ही बात सोची । दुख तो अधिक इस बात का है कि आप खुद भी गये काम से और हमारा भी सब कुछ चौपट कर दिया क्योंकि "बुद्ध" अब ऐसी गलती जो नहीं करेंगे "अब किसी को आश्वासन देने की भूल नहीं कर सकते" क्यों गये न काम से ? स्वयं भी गये और हमें भी मार डाला ? इस बात को, और यों कहना था । ठीक अवसर के लिए बहुत प्रतीक्षा करनी थी । खैर, तुम्हारा नम्बर तो कट गया, अब मैं ऐसी गलती नहीं करने का ! हंस रहे हैं ? **सोचते हैं बुद्ध को फंसाना मुश्किल है । माना पर कृष्ण तो फंसते हैं ? बुद्ध न फंसें, हम कृष्ण को फंसायेंगे वह तो आगे होकर फंसते हैं । वहां खाली बुद्ध ही नहीं हैं, पूरे कृष्ण हैं, भूल गये आजोल की लीला ?** खाली बुद्ध या महावीर या जीसस होते तो क्या भूलकर भी कटपीस की दुकान उद्घाटन हेतु जाते ? कदापि नहीं— **वह तो कृष्ण ही सब जगह जा सकते हैं ।**

पत्र लम्बा हो रहा है ऐसी आशा नहीं थी । कुछ अपना परिचय दूं—स्थानीय केन्द्रीय विद्यालय में अंग्रेजी का Post Graduate Teacher हूं, अजमेर का रहने वाला हूं । १॥ साल से आचार्यजी को सुन पढ़ रहा हूं— परन्तु **आजोल शिविर के बाद तो—निकले जो मयकदे से तो दुनियाँ बदल गई**— ऐसी मुश्किल हो गई कि सब पढ़ना बन्द हो गया । शरद जिसको मैं कितनी भी बार पढ़ सकता था नहीं पढ़ा जा रहा ।

अब तो रजनीश ने सब अंधेरों से तोड़ केवल अपनी ही स्निग्ध रोशनी में सराबोर कर डाल है । पुरानी सारी Conditioning तो टूट गई पर रजनीशी कन्डीशनिंग का क्या होगा ? और मजा ये है कि जब उनसे अकेले में मिलने गया तो एक शब्द भी नहीं निकला बिल्कुल मौन और बस आंसू और आंसू ।

और क्या लिखूं—क्या कहूं—सब कहना व्यर्थ है जो कहा ही न जा सके उसे कहने का प्रयास ही व्यर्थ है—फिर भी जन्म दिवस पर जो प्रेमाश्रु आचार्य श्री के चरणों में समर्पित किये थे उसकी नकल भेज रहा हूं ।

हां एक प्रार्थना—आप काफी नजदीक हैं इसलिए ध्यान रहे फिर उन्हें किसी कटपीस की दुकान के उद्घाटन के लिए नहीं ले जावें—**वे बहुत सरल हो गये हैं । जहां ले जायेंगे, वहीं चले जायेंगे ।** और आप तो लोगों को जानते ही हैं । क्या वे ही रह गये इन कामों के लिये ? सारे मन्त्री क्या मर गये ?

पत्र बहुत हो गया । क्षमा करेंगे । बहुत इनफोरमल हो गया । क्या करूँ 'राइवल' जो हैं आप मेरे । और इसलिए तो ये पत्र लिखा । फिर 'राइवल' की एक बहुत बड़ी खूबी होती है कि वह बिल्कुल अपने जैसा ही होता है, नहीं तो 'राइवल' कैसे हो ? तो मेरे प्रिय राइवल को हार्दिक शुभकामनायें व बहुत बहुत प्रेमपूर्ण प्रणाम ।

पत्र तो देंगे ही । कृपया अरविन्द कुमार जी से भी प्रणाम व धन्यवाद कह दें । कृपया श्री कामता सागर को भी मेरी ओर से हार्दिक बधाईयां दे दें इतने सुन्दर और..... (क्या शब्द कहूं ? आप मदद करें ।) चित्र के लिए ।

आपका ही—
आर० एन० ऐरन (अहमदाबाद)

—■—

जन्म दिवस पर

हे रजनीश !
अब तुझे क्या दूं ?
तुझे कोई दे भी क्या सकता है ?
तू तो स्वयं देने निकला है
हर अन्धे को आंख देता है
हर दुखी को सुख,
हर कृपण को धन,
रह मृत को अमृत,
हर भूले को राह
हर प्यासे को एक अमिट प्यास,
स्वयं को पाने की !
फिर तू ही बता, फिर तुझे क्या दूं ?

हां वह आनन्द, वह प्रेम,
जो तू सबको बांट रहा है,
भीतर की राह लगा,
तो ले जानले और
दूना चौगना करले अपने आनन्द को
कि एक और हृदय में आनन्द का सागर उमड़ा है,
कि एक और आंख अलोकित हुई है,
कि एक और प्रभु के चरणों में नत मस्तक हुआ है ।
हे प्रभु के बन्दे ।
ये मैं और मेरे जैसे कितने ही,
सदैव सदैव तेरे आभारी हैं
तेरे शुभ चरणों में इस शुभ दिन
प्रेम में भीगे कोटि-कोटि धन्यवाद
व प्रणाम ।

तेरा ही—
आर० एन० ऐरन

(उपर्युक्त पत्र का उत्तर श्री शिव द्वारा प्रस्तुत)

मेरे प्यारे ऐरन,
शिव अब मर ही जायेगा,
क्योंकि अगर नहीं मरता
तो इतना सारा प्रेम सह पाना
बहुत मुश्किल हो गया है !
अब तो 'वही' सहे
जो न केवल इस सबका कारण है
वरन् सभी कारणों का आदि कारण है,
जिसको कोई कुछ कहता है
कोई कुछ.....
जिसको मैं पहले 'गुरुदेव' कहता था
फिर 'प्रभो' कहने लगा,
फिर आचार्य जा,
फिर रजनीश,
फिर 'मेरे राजा'

●

और अब कुछ नहीं कहता.....!!
और अब शायद मैं कुछ लिखूं नहीं ।
न आजोल की बातें
न कहीं की
आजोल की तो थोड़ा भी शब्दों के पकड़ में नहीं आतीं,
तुम तो थे न ?
आज बस ।

—शिव के प्रणाम
२९ । १२ । ७०

(नोटः— "जन्म दिवस विशेषांक" की दूसरी प्रतिक्रिया कृपया पृष्ठ ३२ पर देखें)

निवेदन

'युक्रांद' का "आचार्य श्री रजनीश-जन्म दिवस-विशेषांक" प्रेमी पाठकों द्वारा बेहद पसंद किया गया है, इस आशय के पत्र हमें मिल रहे हैं। कई पाठकों ने तो लिखा है कि विशेषांक के हर पष्ठ पर वे जी भर कर रोये हैं क्योंकि आंसू थमते ही न थे। सब मिलाकर पाठकों ने चाहा है कि युक्रांद इसी तरह आचार्य जी व उनके जीवन से संबंधित सभी पहलुओं पर संस्मरण निरंतर देता रहे।

अतः प्रेमियों से निवेदन है कि वे आचार्य श्री से संबंधित संस्मरण हमें भेजें ताकि हर अंक में एकाध दिया जाता रहे।

एक अनुरोध और—लिखें साफ और पन्ने के एक ही ओर ।

—संपादक

पत्र–प्रेरणा

(श्री बाबुभाई एस० मोतीवाला, सैयदपुरा, सूरत–३ [गुजरात] को लिखा गया पत्र)

मेरे प्रिय,

प्रेम । आपका पत्र पाकर आनंदित हूं ।

ध्यान अज्ञात में प्रवेश है ।

और मार्ग में बहुत से सूक्ष्म अनुभव भी घटित होते हैं ।

रंगों के, ध्वनियों के, गंधों के, स्वादों के ।

लेकिन, वे अनुभव ध्यान नहीं हैं ।

वे भी अचेतन मन की ही सीमा में हैं ।

और वे भी ऐंद्रिक ही हैं ।

लेकिन, वे गहराई में उतरना प्रारंभ हुआ है इसके सूचक जरूर हैं ।

मन के पास अनंत जन्मों की स्मृतियां हैं ।

अनंत जन्मों की और अनंत योनियों को ।

उन सबसे पार जाना है ।

मन के भी पार जाना है ।

लेकिन उनसे गुजर कर ही तो पार जा सकते हैं न ?

इसलिए गुजरें जरूर, लेकिन उन पर बहुत ध्यान न दें ।

न उन पर विचार ही करें ।

और न ही उनका कार्य-कारण खोजें ।

क्योंकि इस भांति वे अटकाव बन जाते हैं ।

एक ही ध्यान रखें कि जाना है वहां जहां कि कोई भी अनुभव नहीं है ।

क्योंकि वही परम अनुभूति है ।

शून्य में जाना है ।

निराकार में जाना है ।

अनादि में जाना है ।

अनंत में जाना है ।

इसलिए, आकारों से, अनुभवों से, स्मृतियों से अनासक्त रहना ।

देखना और आगे बढ़ जाना ।

आगे, आगे और आगे ।

मंजिल वहां है, जहां फिर और आगे नहीं है ।

रजनीश के प्रणाम

२ । ६ । ७०

प्यारी जया,
प्रेम। ध्यान की पहली सीढ़ी पर तू खड़ी हो गई है।
साहस, संकल्प और श्रम कभी असफल नहीं होता है।
तेरी कठिनाइयों का मुझे ज्ञान है; लेकिन तू उनसे जूझी और हारी नहीं; इससे मैं बहुत आनंदित हूं।
खुदाई शुरू हो गई है उस कुए की जिसके अंतिम चरण में सच्चिदानंद की उपलब्धि होती है।
लेकिन, अब रुकना नहीं।
जिसे प्रारंभ किया है, उसे पूरा भी करना।
कुआं खोदते हैं तो पहले कंकड़ पत्थर ही निकलते हैं।
बीच में चट्टानें भी आती हैं।
जलस्रोत तो अंततः ही प्राप्त होते हैं।
ऐसा ही ध्यान में भी होता है।
कंकड़, पत्थर के निकलते ही तू भागने को हो गई थी।
मैं बड़ी मुश्किल से ही तुझे रोक पाया।
लेकिन, अब डर नहीं है।
क्योंकि आनन्द की झलक जो तुझे मिल गई है।
अब तो वह झलक ही खींचेगी।
और गहरे, और गहरे।
और आगे, और आगे।
उस क्षण तक जब तक कि अतल गहराई नहीं मिल जाती है।

रजनीश के प्रणाम
११।६।७०

(श्री आनन्दमूर्ति बड़ौदा को लिखा गया एक पत्र)

प्रिय आनंदमूर्ति,
प्रेम। फौलाद के बनो—मिट्टी के होने से अब काम नहीं चलेगा।
सन्यासी होना प्रभु के सैनिक होना है।
माता पिता की सेवा करो।
पहले से भी ज्यादा।
सन्यासी बेटे का आनंद उन्हें दो।
लेकिन, झुकना नहीं।
अपने संकल्प पर दृढ़ रहना।
इसी में परिवार का गौरव है।
जो बेटा सन्यास जैसे संकल्प में समझौता कर ले वह कुल के लिए कलंक है।
मैं आश्वस्त हूं तुम्हारे लिए।
इसीलिए तो तुम्हारे सन्यास का साक्षी बना हूं।
हँसो और सब झेलो।
हँसो और सब सुनो।
यही साधना है।
आंधियां आयेंगी और चली जायेंगी।

रजनीश के प्रणाम।
१६-१०-१९७०

श्रायुत अश्विनी कुमार, मैहर (जि० सतना) को लिखा गया एक पत्र

मेरे प्रिय,

प्रेम बूंद मिटती है तो सागर हो जाती है।
बीज मिटता है तो वृक्ष हो जाता है।
मनुष्य मिटता है तो प्रभु हो जाता है।
इसलिए चाहा कि तुम मिटो; क्योंकि मिटना ही होने का मार्ग है।
बचाना मत स्वयं को अन्यथा मिटोगे।
मिटाना ताकि बच सको।
धर्म का यही सनातन नियम है।
और प्रेम का यही सनातन नियम है।
असल में धर्म और प्रेम एक ही सत्य के दो नाम हैं।
इसलिए, मेरा प्रेम भी वही करता है, जो कि प्रेम ही कर सकता है।
सागर सामने है।
लेकिन भय के कारण हमारी आँखें बन्द हैं।
सागर सामने है।
लेकिन भय के कारण हम तट पर ही पैर गड़ाकर खड़े हो गये हैं।
मैंने तुम्हें तट से धक्का दे दिया है।
और तुम्हें सागर में दूर खोता जाता देख प्रभु को धन्यवाद दे रहा हूं।
भूलकर भी लौट मत आना।
अज्ञात की पुकार सुनना और आगे बढ़ना और आगे बढ़ते जाना।
ज्ञात को भूल ही जाना।
उसे पकड़कर रूक जाने के अतिरिक्त और कोई अज्ञान नहीं है।
अज्ञात की बांहों में स्वयं को छोड़ देना, क्योंकि उसके अतिरिक्त और कोई ज्ञान नहीं है।
सागर डुबायेगा तो डूब जाना।
क्योंकि सागर से एक हुए बिना सागर को जाना भी कैसे जा सकता है।

रजनीश के प्रणाम

१०-१-७०

प्रेमी साधकों से

'युक्रांद' आपके प्रेम और सहयोग का कितना ऋणी है, यह मैं किन शब्दों में कहूं। पूज्य आचार्य श्री की वाणी को संकलित कर युक्रांद में प्रकाशन हेतु जो प्रेमी साधक पहुंचा रहे हैं, उसी से युक्रांद में सतत् नवीनता बनी रहती है। पुनः आपसे निवेदन है कि पूज्य आचार्य श्री की वाणी को संकलित कर आप हमें अवश्य पहुंचाते रहें। प्रणाम।

आर० आर० मिश्रा

* व्यवस्थापक, युक्रांद

युक्रांद के शरीर को जिनने अपना खून देकर हमारी आत्मा को गति दी है

प्रियवर,

अक्टूबर, ७० के अंक में हमने आपको सूचित किया था कि हमें देश के कौने-कौने से ५१०/ रुपया की स्थायी निधि प्राप्त हुई है। तत्पश्चात् अब तक हमारे प्रेमी आत्मीय जनों ने ५१२/ रु. की राशि और प्रदान कर, कुल स्थायी निधि को १,०२२/ रु. तक पहुंचा दिया है।

मुझे विदित है कि आप भी इस पावन क्रांति में अपना हाथ अवश्य बटांना चाह रहे हैं, पर आपकी अति कार्य-व्यस्तता से यह अवसर नहीं आ पाया है।

पर, कार्य की विशालता को देखते हुए—आप अपना अंशदान शीघ्र पहुंचायेंगे ऐसी आशा है।

जिनसे हमें पिछले अंक के बाद इस दिशा में सहयोग मिला, जिससे कि मानवीय चेतना आचार्य श्री की वाणी से नित नये चेतना के आयामों को छू सके, उनके नाम व पते इस प्रकार हैं।

क्रमांक	नाम एवं पता	प्राप्त राशि	क्रमांक	नाम एवं पता	प्राप्ति राशि
१.	श्रीमती लीना बनर्जी, न्यू लेडीज कॉलोनी, बनारस विश्वविद्यालय, बनारस	२५) रु.	६.	श्री प्रेमनारायण जैन, बरेली (भोपाल म. प्र.)	१०) रु.
२.	श्री जगदीश प्रसाद जैन, तालाब बहादर सिंह, नारनौल (हरयाणा)	२५) रु.	७.	श्री चन्द्रकान्त न. पटैल, आसोपालव, बैंक आफ इंडिया के सामने, रावपुरा, बड़ौदा (गुज.)	२५) रु.
३.	श्रीमती चित्रा जाजू, १३, सुभाष नगर, अहमदाबाद–४	५१) रु.	८.	श्री रामदास भिका पाटिल, फ्रूट, वेजीटेबिल मर्चेंट एंड कमीशन एजेंट, नंदुरबार (धूलिया)	२५) रु.
४.	श्री देवेन्द्र विजय श्रीवास्तव, ५६, कृष्णनगर (कच्ची) कीटगंज, इलाहाबाद–३	१०) रु.	९.	श्री जी. आर. देवकर, प्लाट नं. १३, स्ट्रीट नं. ३, रामबाग, इन्दौर (म. प्र.)	१०) रु.
५.	श्री रामगोपाल शिकारपुरिया गोपाल प्रिन्टिंग वर्क्स, चांटी विंड गेट के बाहर, कोटमित सिंह, अमृतसर	२१) रु.	१०.	श्री एन. सी. तिवारी, एल. एच. १, तिलकनगर, इन्दौर (म. प्र.)	१०) रु.

११. श्री डा. बी. एल. पाटिल, १०) रु.
राष्ट्रीय चिकित्सालय,
पोस्ट : हलसूर, व्हाया : भालकी
जि० बिदार (मैसूर)

१२. डा. मदन, २५) रु.
गोराबाजार, गाजीपुर (उ. प्र.)

१३. श्रीमती संजीवनी देवी, १०) रु.
सुख भवन, सिविल लाइन्स,
लुधियाना

१४. श्री रामविलास प्रसाद १०) रु.
खैनी दुकान, मौना चौक,
छपरा (सारण, बिहार)

१५. श्री दाऊलाल त्रिवेदी, १०) रु.
चौक चांदपोल गेट
जोधपुर

१६. श्रीमती शिरीष पै, २५) रु.
संपादिका मराठा, वर्ली.
मुंबई-१८

१७. श्री धीरज जगदीश मकवाना, १०) रु.
जगदीश स्टोर, बाजार,
धोराजी (गुजरात)

१८. श्री रहमान जी, १०) रु.
हनुमानवार्ड, गाडरवारा (म. प्र.)

१९. श्री मगनभाई } १०) रु.
श्री लालजी भाई } जूनागढ़ १०) रु.
श्री विष्णु भाई } (सौरा.) १०) रु.

२०. श्रीमती राजदुलारी, २५) रु.
२५/३६, शक्ति नगर,
न्यू देहली

२१. श्री एस. आर. पटैल, २०) रु.
पटैल सेनोटेरियम,
गिरधरनगर, अहमदाबाद ४

२२. श्रीमती दत्ता, १०) रु.
३३, कपूरथला रोड
जालंधर

२३. श्रीमती उर्मिला मिश्र २१) रु.
C/o श्री हरेकांत मिश्र
पो. तिसरी (जि. हजारीबाग, बिहार)

२४. श्री एम. राममूर्ति, १०) रु.
म० नं. १६-३-१५०,
चन्नाकेशव टेम्पिल, चंचलगुड़ा,
हैदराबाद

२५. श्री एस. प्रेमदास १०) रु.
म. नं. १७-५-७० यकूथपुरा
हैदराबाद

२६. श्री वेणीलाल छगनलाल मेहता ५०) रु.
चंटा बाजार, सोनी फलिया,
अंबलेश्वर (जि. भड़.च)

२७. ठाकुर किशनसिंह, १०)
म. नं. १४-५-३०३,
साईनायगंज, बेगम बाजार, हैदराबाद

कुल प्राप्त ५१२) रुपया

नोट : स्थायी निधि हेतु हम १०,०००) रु. राशि का कोष बना रहे हैं। अतः आपका उदार सह मिले बिना यह कार्य पूर्ण न होगा।

उस तिनके के आनंद की सीमा नहीं है।

वह नाच रहा है।

वह हंस रहा है।

वह गीत गा रहा है।

क्योंकि, वह जीत रहा है।

वह जानता है कि लड़े कि हारे।

वह यह भी जानता है कि हारे कि जीते।

और मजा तो यह है कि गंगा को दोनों का ही पता नहीं है!

गंगा को दोनों से ही कोई भेद नहीं पड़ता है!

लेकिन, तिनकों को तो बहुत भेद पड़ता है!

एक मित्र मेरे साथ हैं।

मैंने उनसे कहा : "देखते हैं मृत्यु और जीवन का भेद यही है। अधर्म और धर्म का भी भेद यही है।"

फिर यह भी कहा : "लाओत्से या चुआंग-त्से आज यहां होते तो वे कहते कि दूसरा तिनका ताओ को उपलब्ध हो गया है।"

लेकिन, शायद उन्होंने नहीं सुना है।

मैं उनकी आंखों में झांकता हूं।

शायद वे वहां मौजूद ही नहीं हैं।

उन्हें मैं भलीभांति जानता हूं : वे पहले तिनके की ही भांति हैं। शायद, वे कहीं दूर किसी गंगा से लड़ रहे हैं!

उनके माथे पर चिंता है।

उनकी आत्मा में तनाव है।

उनका अस्तित्व ही संताप हो गया है।

(एक चर्चा से)
(संकलन : क्रांति)

मानसेवी संपादक : अरविन्द कुमार। सह संपादक : आलोक कुमार पाण्डे। व्यवस्थापक : श्री आर. आर. मिश्रा
स्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, कमला नेहरू नगर, जबलपुर।
ण : श्रीपाल प्रिन्टर्स, १६१, कोतवाली वार्ड, जबलपुर से मानसेवी संपादक अरविन्द कुमार के लिये मुद्रित।
वर्ष : २ ॥ १ एवं १६ दिसंबर ७० ॥ अंक : ~~११-१२~~ ९-१० ॥ मूल्य : १.००
॥ वार्षिक मूल्य : १२.०० ॥

५७ ८-८०

STRESSCON CORPORATION

FOR

ANYTHING & EVERYTHING

IN

PRECAST PRESTRESSED CONCRETE

CONSTRUCTION

●

202, LAL BAHADUR SHASTRI MARG,
GHATKOPAR,
BOMBAY—86 AS

TELEPHONES : 582593 & 582594

मुखपृष्ठ चित्र : श्री कामता सागर, ब्योहारबाग, जबलपुर।